This book is the Hindi Translation of 'The True Book About Inventions' by Egon Larsen, Published by Frederick Muller Ltd., London.

---

प्रकाशक :
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
२६ ए, जवाहरनगर, दिल्ली

विक्री-केन्द्र : नई सड़क, दिल्ली

अनुवाद :
सुनीति देवी

पुनरीक्षण
विराज एम. ए.



मुद्रक : भारत मुद्रणालय,
शाहदरा दिल्ली–३२

# दो शब्द

हिन्दी के विकास और प्रसार के लिए शिक्षा मंत्रालय के तत्त्वावधान में पुस्तकों के प्रकाशन की विभिन्न योजनाएं कार्यान्वित की जा रही हैं। हिन्दी में अभी तक ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध नहीं है; इसलिए ऐसे साहित्य के प्रकाशन को विशेप प्रोत्साहन दिया जा रहा है। यह तो आवश्यक है ही कि ऐसी पुस्तकें उच्चकोटि की हों, किन्तु यह भी ज़रूरी है कि वे अधिक महंगी न हों ताकि सामान्य हिन्दी पाठक उन्हें खरीदकर पढ़ सकें। इन उद्देश्यों को सामने रखते हुए जो योजनाएं बनायी गयी हैं उनमें से एक योजना प्रकाशकों के सहयोग से पुस्तकें प्रकाशित करने की है। इस योजना के अधीन भारत सरकार प्रकाशकों को या तो वित्तीय सहायता प्रदान करती है अथवा प्रकाशित पुस्तकों की, निश्चित संख्या में, प्रतियां खरीदकर उन्हें मदद पहुंचाती है।

प्रस्तुत पुस्तक इसी योजना के अन्तर्गत प्रकाशित की जा रही है। इसके अनुवाद और कापी-राइट इत्यादि की व्यवस्था प्रकाशक ने स्वयं की है तथा इसमें वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का उपयोग किया गया है।

हमें विश्वास है कि शासन और प्रकाशकों के सहयोग से प्रकाशित साहित्य हिन्दी को समृद्ध बनाने में सहायक सिद्ध होगा और साथ ही इसके द्वारा ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित अधिकाधिक पुस्तकें हिन्दी के पाठकों को उपलब्ध हो सकेंगी।

आशा है, यह योजना सभी क्षेत्रों में लोकप्रिय होगी।

शिक्षामंत्रालय

संयुक्त शिक्षा सलाहकार

# विषय सूची



# चित्र सूची

अध्याय १

# विचार मुद्रित रूप में

आपके हाथों में जो यह पुस्तक है, यह छपी हुई है। आप कहेंगे : छपी हुई तो यह है ही, नहीं तो यह पुस्तक ही न होती।

परन्तु आप गलती पर हैं। पुस्तकें केवल पिछले पांच सौ वर्षों में ही छपने लगी हैं, जो मानव जाति के इतिहास में बहुत क्षुद्र-सी अवधि है। उससे पहले पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थीं। मिस्री लिपिक, रोमवासी दास और मध्यकालीन साधु बड़ी मेहनत और यत्न से पुस्तकों को लिखते थे।

किसी समय मिस्र में सिकन्दरिया में एक विशाल पुस्तकालय था, जिसमें ४ लाख हस्तलिखित पुस्तकें थीं। इनमें प्राचीन संसार का पूर्ण ज्ञान और सूझबूझ, साहित्य और लोकवार्ताएं भरी थीं। रोमन साम्राज्य के पतन के बाद जो उथल-पुथल हुई, उसमें यह पुस्तकालय जला कर राख कर दिया गया। जो कुछ उस पुस्तकालय में था, वह सदा के लिए नष्ट हो गया। कारण यह है कि उन चार लाख पुस्तकों में से कुछ ही पुस्तकें ऐसी थीं, जिनकी दूसरी प्रतियां कहीं अन्यत्र विद्यमान थीं। जिन अग्नि की ज्वालाओं ने सिकन्दरिया के पुस्तकालय को नष्ट किया, उन्होंने हमें प्रतिभा, ज्ञान और सौन्दर्य की एक

विशाल सम्पत्ति से वंचित कर दिया।

अब ऐसा फिर कभी नहीं हो सकता। कारण यह है कि हमने छापने की कला सीख ली है और पढ़ने योग्य कोई भी पुस्तक ऐसी नहीं है, जिसकी केवल एक ही प्रति विद्यमान हो। यह कहा जाता है कि मनुष्य का सबसे बड़ा आविष्कार पहिया है। परन्तु सम्भवतः मुद्रण (छपाई) का आविष्कार उससे भी बड़ा है। मुद्रण का आविष्कार किन परिस्थितियों में हुआ, इस विषय में हमें बहुत मालूम नहीं है। परन्तु जो थोड़ा-बहुत हमें मालूम है, उससे पता चलता है कि मुद्रण का इतिहास काफी कुछ नाटकीय ढंग का रहा है।

### चल टाइप का आविष्कार किसने किया

इस पुस्तक में आपको यह बात पता चलेगी कि कई आविष्कार ऐसे थे, जिनका आविष्कार एक ही समय में अनेक व्यक्तियों ने किया और कुछ मामलों में यह कह पाना बहुत कठिन है कि उनमें से पहला आविष्कारक कौन था। इतिहास के कुछ कालों में कई विचार 'हवा में' थे। किसी कारण किसी अमुक मशीन या उपकरण की मांग थी और बहुधा कई व्यक्तियों ने अलग-अलग देशों में एक-दूसरे से बिल्कुल स्वतन्त्र रूप में उस समस्या को हल करने का प्रयत्न किया। किसी आविष्कार के सफल होने के लिए यह आवश्यक है कि उसके लिए कोई 'बाज़ार' हो। कई आविष्कार उस समय से पहले हो गये, जबकि उनकी आवश्यकता हुई और जिन लोगों ने उन आविष्कारों को किया था और जिन्होंने उन पर अपना धन और अपनी शक्ति लगाई

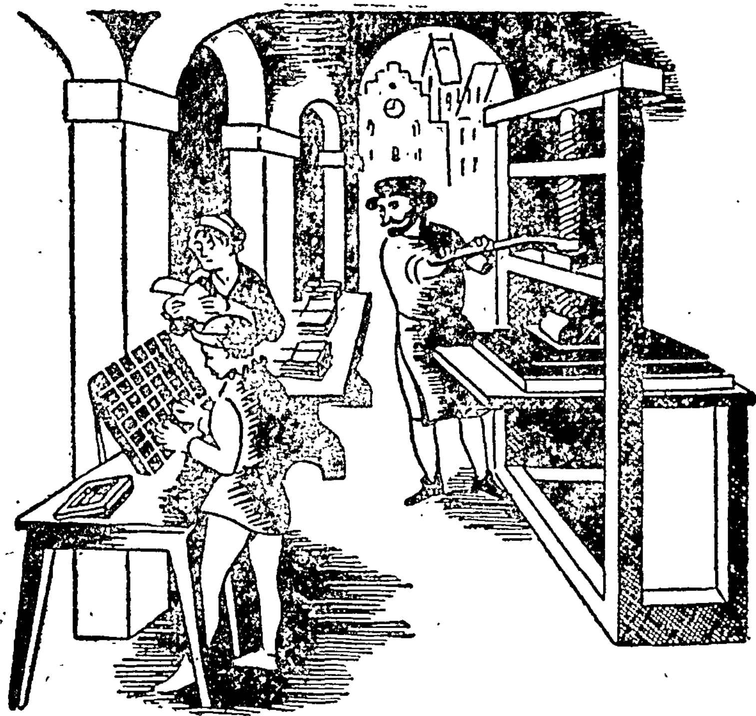
थी, वे अज्ञात और असफल रहे। सफल आविष्कारक बनने का रहस्य इस बात में है कि उस आविष्कार के द्वारा कोई सर्व-जनीन मांग पूरी होती हो। परन्तु जब ऐसी मांग उत्पन्न होती है, तब कई बार अनेक आविष्कारक उस विशिष्ट समस्या को हल करने में जुट जाते हैं।

ऐसा ही लगभग पांच सौ वर्ष पहले हुआ, जबकि मध्य-युग अपनी समाप्ति पर पहुंच रहा था। उस पन्द्रहवीं शताब्दी में अनेक महत्त्वपूर्ण बातें हुईं। मार्टिन ल्यूथर ने ईसाई धर्म का सुधार किया। तुर्कों ने कुस्तुन्तुनिया को जीत लिया। कोलम्बस ने अमेरिका की खोज की। सारे यूरोप में एक नई हवा बह चली, जिससे जनता जाग्रत हो गई और लोग यह समझने लगे कि वे सोचने-समझने वाले मानव प्राणी हैं और उनमें ज्ञान प्राप्त करने, सीखने अर्थात् पढ़ने की उत्सुकता जाग्रत हुई।

हालैंड के नगर हारलेम में दो स्मारक हैं, जो किसी लारेंस कौस्टर द्वारा चल टाइपों द्वारा मुद्रण के आविष्कार की स्मृति में बनाये गये हैं। इटली के एक छोटे-से नगर फैल्त्रे में एक और स्मारक है, जो एक डाक्टर के सम्मान में बनाया गया है। यह डाक्टर उस नगर में रहता था और यह समझा जाता है कि उसने भी वैसा ही आविष्कार किया था। स्ट्रासबुर्ग और प्राग में भी अपने-अपने नागरिकों की ओर से इसी प्रकार के मुद्रण के आविष्कार का दावा करते हुए ऐसे ही स्मारक खड़े किये गये हैं। इन सब मामलों में उस आविष्कार के किये जाने का दावा एक ही काल में—पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में किया गया है।

परन्तु इतिहास ने इन दावों को नहीं माना। यह तय पाया

गया है कि जौहन गैन्सफि्लस्ख ज़म गुटेनवर्ग चल अक्षरों द्वारा छपाई का असली आविष्कारक था। उसका जन्म जर्मनी में मेन्ज़ नामक नगर में सन् १४०० से कुछ वर्ष पूर्व हुआ था।



प्रारम्भिक छपाई : गुटेनवर्ग का मुद्रणालय

## गुटेनबर्ग का करुण अन्त

गैन्सफि्लस्ख मेन्ज़ नगर के गुटेनबर्ग मुहल्ले में रहने वाले लोगों के एक नागरिक परिवार का नाम था और क्योंकि जर्मन शब्द 'गैन्सफि्लस्ख' का अर्थ है 'हंस का मांस' इसलिए युवक जौहन ने अपना नाम गुटेनबर्ग रखना पसन्द किया, क्योंकि यह

सुनने में अधिक भला लगता था। उस समय नागरिक अधिकारियों ने कुछ नये कठोर कर लगाये थे और गुटेनबर्ग को ऐसा लगा कि उसके परिवार तथा अन्य सम्पन्न नागरिकों के साथ अन्यायपूर्ण वर्ताव किया जा रहा है, इसलिए प्रतिवाद के तौर पर उसने मेन्ज़ नगर को छोड़ दिया और राइन नदी के दूसरे पार स्ट्रासबुर्ग में जाकर रहने लगा।

ऐसा लगता है कि वहां गुटेनबर्ग ब्लौकों द्वारा पुस्तकों की छपाई का काम करने लगा। ब्लौकों द्वारा पुस्तकों की छपाई की पद्धति चल टाइपों द्वारा छपाई के आविष्कार से पहले यूरोप और चीन में प्रचलित थी। इसमें एक-एक चित्र को लकड़ी के टुकड़ों (ब्लौकों) पर खोद लिया जाता था। प्रायः उसके नीचे व्याख्या के रूप में कुछ लिखा भी रहता था। उसके बाद उस ब्लौक पर स्याही लगाई जाती थी। फिर उस पर एक कागज़ रख कर उसे रगड़ कर या दबा कर चित्र को कागज़ पर उतार लिया जाता था। इस प्रकार बहुत सी पुस्तकें तैयार की जाती थीं। यह 'छपाई' अवश्य थी, परन्तु एक बहुत ही अपरिष्कृत, थकाने वाली और भद्दे ढंग की छपाई थी।

परन्तु यही वह काम था, जिसे गुटेनबर्ग ने स्ट्रासबुर्ग में रत्नों की कटाई और एक नई पद्धति द्वारा दर्पणों पर पालिश करने के काम पर अपना हाथ आज़माने के बाद शुरू किया। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने लकड़ी के ब्लौकों की छपाई के लिए एक विशेष प्रकार के मुद्रण यन्त्र का आविष्कार किया था, क्योंकि कुछ ऐसे प्रलेख मिलते हैं, जो एक बहुत ही जटिल मुकदमे से सम्बन्धित हैं। गुटेनबर्ग इस मुकदमे में फंसा था। यह

मुकदमा एक गुप्त प्रकार के मुद्रण यन्त्र के विषय में था, जो वाद में लुप्त हो गया था। हो सकता है कि गुटेनबर्ग ने शब्दों, पृष्ठों और समूची पुस्तकों को तैयार करने के लिए अलग-अलग चल अक्षरों का उपयोग करने की बात पहले-पहल तभी सोची हो।

स्ट्रासबुर्ग में १० वर्ष तक रहने के बाद वह सन् १४४४ के आसपास मेन्ज़ नगर में लौट आया। अब उसकी आयु पचास वर्ष के लगभग थी और सम्भवत: उसका महान विचार उसके मन में बिल्कुल स्पष्ट रूप से विकसित हो चुका था : वह विचार यह था कि वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर के लिए सांचे बनाये जायें, जिनके द्वारा धातु के छोटे-छोटे चल टाइप ढाले जा सकें। ये टाइप लम्बाई में बिल्कुल समान हों, जिससे पंक्तियां तैयार करने के लिए उन्हें एक दूसरे के साथ-साथ जमाया जा सके और फिर उन पंक्तियों को साथ मिला कर पृष्ठ तैयार किये जा सकें। जिस मनुष्य के मन में इस प्रकार का विचार आया, वह अवश्य ही एक प्रकार का विद्रोही रहा होगा। कारण यह है कि उसकी इस पद्धति से मुद्रक लोग बहुत सस्ती लागत से पुस्तकें तैयार कर सकेंगे और इस प्रकार ज्ञान के भंडार को प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुलभ बना सकेंगे—अब तक ज्ञान के इस भंडार को 'जन साधारण' यत्नपूर्वक दूर ही रखा जाता था। धनी और कुलीन लोगों का यह दृढ़ विश्वास

हुथबकतअधिक ज्ञान से लोगों के मस्तिष्क में विचार भरने लगेंगे और जहां एक बार सामान्य मनुष्यों ने पढ़ना और सोचना सीख लिया, फिर उनकी अपने से बड़ों (जमींदारों, राजाओं और धर्माध्यक्षों) के प्रति आज्ञापरायणता समाप्त हो

जायेगी। हो सकता है कि गुटेनबर्ग का यह विश्वास रहा हो कि यदि अन्धकारपूर्ण युग, अज्ञान का युग, समाप्त हो जाये, तो संसार कहीं अधिक अच्छा स्थान बन जायेगा। कारण चाहे जो भी रहा हो, उसके आविष्कार से लोगों को मन का एक बहुत शक्तिशाली शस्त्र मिल गया। इससे 'आधुनिक युग' का प्रारम्भ हुआ।

परन्तु उन दिनों—जैसा कि आज भी है—परीक्षण करने पर धन व्यय करना पड़ता था और गुटेनबर्ग के पास अपना जितना धन था, उसे वह स्ट्रासबुर्ग में खर्च कर चुका था। इस-लिए उसने मेन्ज़ नगर के एक धनी और सम्भ्रान्त वकील को, जिसका नाम जौहन फस्ट था, अपनी योजना में मिलाया। फस्ट ने उसे आठ सौ फ्लोरिन की राशि उधार दी, जो काफी बड़ी राशि थी। उन्होंने आपस में एक समझौता कर लिया, जिसके अनुसार फस्ट को उस आविष्कार में समान अधिकार मिल गए। इस समझौते में कुछ ऐसे धूर्ततापूर्वक लिखे गये अनुच्छेद भी थे, जिनका अर्थ पहले गुटेनबर्ग पूरी तरह नहीं समझ सका। उसे यह अर्थ शीघ्र ही पता चलना था।

गुटेनबर्ग ने सुन्दर अक्षरों के नमूने तैयार किये और उनसे वर्णमाला के अक्षर बड़ी संख्या में ढाल लिये गये। बड़े-बड़े मुद्रण यन्त्र तैयार किये गये, जिनमें परिचालन के लिए ६ फुट लम्बी छड़ें लगी हुई थीं। धीरे-धीरे अनेक परीक्षणों और भूलों द्वारा वह आविष्कार परीक्षण से वास्तविक मुद्रण की स्थिति तक पहुंचा। उसने अपने प्रथम मुद्रण कार्य के लिए एक प्राचीन जर्मन धार्मिक कविता चुनी। उसकी पद्धति सफल रही।

उसके बाद सन् १४५५ में इस पहले मुद्रणालय ने अपना श्रेष्ठ ग्रंथ छाप कर प्रस्तुत किया—यह लेटिन भाषा में लिखी समूची बाइबिल थी। इसमें १२८२ पृष्ठ थे और प्रत्येक पृष्ठ में ४२ पंक्तियां थीं। इतने छोटे और अब भी बहुत कुछ परीक्षणात्मक उपक्रम की दृष्टि से यह बहुत ही बड़ा काम था। इस कार्य को पूरा करने में अनेक वर्ष लगे होंगे और इसका भार गुटेनबर्ग-फस्ट की साझेदारी पर इतना अधिक पड़ा होगा कि वह टूटने की सीमा तक पहुंच जाये। हुआ यह कि जब यह प्रसिद्ध और शानदार पुस्तक अन्त में पूरी हो गयी, जब अन्तिम कागज़ भी छप चुका और जिल्द बंध चुकी, तब फस्ट ने गुटेनबर्ग से अपना पैसा वापस मांगा।

गुटेनबर्ग अपने कार्य में मग्न रहा था और उसने ऐसे निष्ठुर प्रहार की बिल्कुल आशा नहीं की थी। वह कहीं से इतनी धनराशि न जुटा सका। फस्ट, जो कि एक काइयां वकील था, वर्षों से इस सुअवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। अब गुटेनबर्ग कुछ भी नहीं कर सकता था। उसे विवश होकर अपना मकान और अपना कारखाना छोड़ देना पड़ा और उसने जो पुस्तकें छापी थीं, उन सबको भी छोड़ना पड़ा। फस्ट ने तुरन्त अपने साले को बुला लिया और उसकी, तथा गुटेनबर्ग ने जिन सहायकों को प्रशिक्षित किया था, उनकी सहायता से यह संसार का पहला मुद्रणालय शीघ्र ही खूब समृद्ध हो गया।

गुटेनबर्ग के बाकी जीवन के सम्बन्ध में बहुत कम ज्ञात है। केवल इतना पता है कि नासो के उदार आर्कबिशप ने उसे अपने घर का सम्मानित सदस्य बना लिया था। यह बात १४६५ की

है—अर्थात् उसकी बाइबिल के प्रकाशन के १० साल बाद की और उसकी मृत्यु से केवल दो वर्ष पहले की। कम से कम उसके जीवन के अन्तिम दो वर्ष शान्त और निरुपद्रव ढंग से बीते।

### इंग्लैंड में मुद्रण का प्रारम्भ कैसे हुआ

विलियम कैक्सटन का जन्म कैन्ट में हुआ था। वह व्यापारी बनना चाहता था और वह बेल्जियम के ब्रूगेस शहर में गया। वहां उसने रेशम के व्यापार का काम सीखा। उसके बाद उसने अपना व्यवसाय जमा लिया और उसमें उसे इतनी सफलता मिली कि वह 'व्यापारिक अभियात्री' (मर्चेन्ट ऐडवैंचरर) नामक प्रसिद्ध कम्पनी का प्रबन्धक बना दिया गया। इस पद पर रहते हुए उसने ब्रैवां और ड्यूक आफ बरगंडो के मध्य वाणिज्य संधियां करवाईं। १४६९ में, जबकि उसकी आयु ४५ और ५० के बीच थी, बरगंडी के चार्ल्स दि बोल्ड की पत्नी डचैस मार्गरेट ने उसे अपना वाणिज्य सलाहकार नियुक्त कर लिया।

परन्तु दो वर्ष बाद हम उसे कोलौन में देखते हैं, जहां पहले-पहल उसकी रुचि मुद्रण की कला में हुई। उसने इस कला को सीखने का निश्चय किया। उसके बाद वह ब्रूगेस लौटा और उसने सन् १४७४ में अंग्रेजी भाषा की पहली पुस्तक छापी। यह होमर के 'इलियड' की कहानियों के एक फ्रांसीसी संग्रह का अंग्रेजी अनुवाद था। अनुवाद कैक्सटन ने स्वयं किया था। उसने अपना मुद्रणालय वैस्टमिन्स्टर में लगाने का निश्चय किया। इग्लैंड में स्थापित होने वाला यह पहला मुद्रणालय था।

उसे इस बात पर कभी खेद नहीं हुआ कि उसने पहले

व्यापारी के रूप में और बाद में राज-सभासद के रूप में अपना धन्धा क्यों छोड़ दिया और जीवन में बहुत देर से एक बिल्कुल नया काम क्यों शुरू कर दिया। छपाई ने उसे मुग्ध कर लिया था। जब सन् १४९१ में ७० वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हुई, तो उसे इस बात का सन्तोष था कि उसने साहित्य के अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थों को अपने देशवासियों के लिए सुलभ कर दिया था। सम्भवतः उसने अपने देश की सबसे बड़ी सेवा यह की कि उसने लिखित अंग्रेजी भाषा का उस समय प्रमापीकरण कर दिया; जबकि वर्तनी (हिज्जे) एक अच्छा खासा गोरखधन्धा थी और व्याकरण में हर व्यक्ति अपनी मनमानी करता था।

तीन सौ से भी कुछ अधिक वर्षों तक छपाई की तकनीक वही रही। टाइप के अक्षर हाथ से मिला कर पास-पास रखे जाते थे और छपाई हाथ से चलने वाले मुद्रण यन्त्रों से की जाती थी। सत्रहवीं शताब्दी में मुद्रणालयों से एक नई वस्तु बाहर आई और वह था—समाचार पत्र। शुरू-शुरू में यह एक आराम का धन्धा था; और किसी भी व्यक्ति को इस बात की हबड़-धबड़ नहीं थी कि उसे ताज़ा से ताज़ा खबरें पढ़ने को मिलें। परन्तु व्यापार और जहाज़रानी के विकास के कारण तथा ब्रिटेन के दूर-दूर तक फैलते हुए साम्राज्य के बढ़ते जाने के कारण यह आवश्यक हो गया कि लोगों को नियमित रूप से विश्वसनीय अद्यावधिक जानकारी दी जाती रहे। यह थी वह आवश्यकता, जिसने जौन वाल्टर को, जो पहले लायड्स कम्पनी में बीमेदार था, एक समाचार पत्र शुरू करने को प्रेरणा दी। पहले इस समाचार पत्र का नाम 'दि डेली यूनिवर्सल रजिस्टर' (दैनिक

विश्व पंजी) रखा गया, परन्तु बाद में १७८८ से इसका नाम बदल कर 'टाइम्स' कर दिया गया।

सारी उन्नीसवीं शताब्दी में छपाई से सम्बन्धित आविष्कारों की एक समूची शृंखला इस 'टाइम्स' के द्वारा ही प्रचलन में आई। सन् १८१२ में एक दिन जौन वाल्टर द्वितीय को, जो 'टाइम्स' के संस्थापक का पुत्र था, उसके एक मित्र ने व्हाइट क्रौस स्ट्रीट में एक कारखाने में बुलवाया, जिससे वह गुटेनबर्ग के काल के बाद से छपाई की कला में हुई महानतम प्रगति को देख सके। वहां जो कुछ उसे देखने को मिला, वह एक सर्वप्रथम व्यावहारिक यांत्रिक मुद्रण यन्त्र का प्रदर्शन था। यह मुद्रण यन्त्र वाष्प की शक्ति से काम करता था।

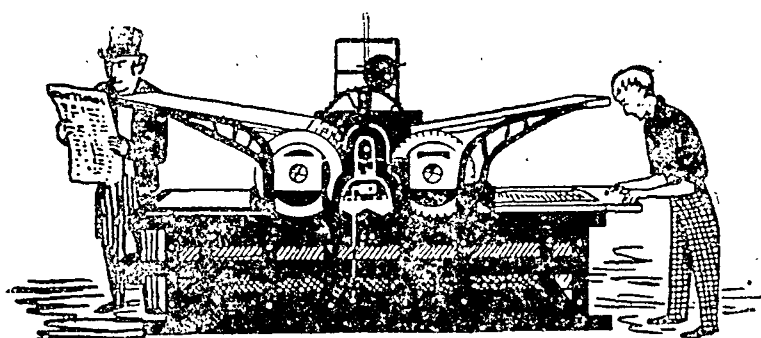
इस मशीन का आविष्कारक जर्मनी का रहने वाला मुद्रक फ्रैडरिख कोनिग था। वह इंग्लैंड इसलिए आया था, क्योंकि इंग्लैंड में पेटेंट के कानून जर्मनी में प्रचलित कानूनों की अपेक्षा आविष्कारक के हितों की रक्षा कहीं अधिक अच्छी प्रकार करते थे। जर्मनी उन दिनों दो दर्जन उपराज्यों में बंटा हुआ था और उनमें से किसी एक में कराये गये पेटेंट का अन्य उपराज्यों में कोई मूल्य नहीं होता था।

कोनिग को उसके आविष्कार में पैसा लगाने के लिए एक व्यक्ति, बैन्सले, मिल गया। एक कुशल जर्मन कारीगर फैडरिख बौअर भी उसका साथी बन गया।

बैन्सले की सहायता से कोनिग और बौअर को जौन वाल्टर से यह ठेका मिल गया कि वे 'टाइम्स' और 'ईवनिंग मेल' के लिए दो दुहरी छपाई की मशीनें बना कर दें। बैन्सले ने इन

मशीनों को बनाने के लिए आवश्यक धन भी दिया। इन विशाल मशीनों का निर्माण पूरा होने में दो वर्ष लगे।

कोनिग की सूझ सीधी-सादी थी। उससे पहले तक जिन कागज़ों को छापा जाना होता था, उनमें से प्रत्येक को मुद्रण यन्त्र में जमा कर रखे गये टाइप पर हाथ से रखना पड़ता था, उस टाइप पर स्याही लगाने का काम भी हाथ से करना पड़ता था और उसके बाद मुद्रण यन्त्र की छड़ को हाथ से ही घुमाना या नीचे दबाना पड़ता था। कुशल से कुशल छपाई करने



कोनिग का यांत्रिक मुद्रणालय (१८१४)

वाले व्यक्ति भी एक घण्टे में समाचार पत्र की ३०० से अधिक प्रतियां नहीं छाप सकते थे। अब क्योंकि शक्ति के स्रोत के रूप में वाष्प-चालित इंजिन उपलब्ध था, इसलिए कोनिग ने ऐसी व्यवस्था की कि यह सारी प्रक्रिया स्वयं यान्त्रिक ढंग से हो सके : जिस फर्मे में टाइप रखा रहता था, वह स्याही लगाने वाले बेलन के नीचे आगे-पीछे चलता था। उस पर हर बार नया कागज़ मशीन से ही ठीक जगह रख दिया जाता था, और एक

दूसरा बेलन उस कागज़ को फर्मे के ऊपर ज़ोर से दबा देता था। उसके बाद छपा हुआ कागज़ मशीन के दूसरे सिरे पर मुद्रक के हाथों में जा पड़ता था और फर्मा फिर वापस लौट आता था, जिससे उस पर फिर स्याही की परत लग सके और उस पर फिर एक नया कागज रखा जा सके। इस प्रकार एक घण्टे में कहीं कम मेहनत से १००० से १२०० तक प्रतियां छापी जा सकती थीं।

'टाइम्स' के मुद्रकों को इन नई मशीनों के सम्बन्ध में पता चल गया था और उन्हें डर था कि कहीं उनकी नौकरी न जाती रहे। जब इन मशीनों को 'टाइम्स' की इमारत में ले जाने के लिए एक गाड़ी में लादा गया, तो वे कारीगर रास्ता रोक कर खड़े हो गये और गाड़ीवान को मारने की धमकी देने लगे।

वाल्टर ने उन मशीनों को गुप-चुप ले जाकर एक अन्य इमारत में लगवा लिया। सन् १८१४ के नवम्बर मास में एक रात उसने अपने कर्मचारियों से कहा कि वे प्रातःकाल के समाचार पत्र की छपाई को रोके रहें, क्योंकि उसे यूरोपीय महाद्वीप से कुछ महत्वपूर्ण समाचारों के आने की प्रतीक्षा है। मुद्रकों को इसमें कोई सन्देहजनक बात नहीं लगी। कुछ घंटे बाद वाल्टर 'टाइम्स' की प्रतियों का एक बण्डल लिये उनके कमरे में घुसा। ये प्रतियां नये यान्त्रिक मुद्रण यन्त्र पर गुप-चुप छापी गई थीं।

जिस वस्तु से पहले-पहल मुद्रकों को अपनी रोटी-दाल संकट में पड़ती मालूम हुई थी, वह शीघ्र ही समूचे मुद्रण व्यवसाय के लिए एक महान वरदान सिद्ध हुई। समाचार पत्रों और बाद में पुस्तकों और पत्रिकाओं की यान्त्रिक छपाई के कारण पाठ्य

सामग्री बहुत सस्ती हो गई और उसकी मांग दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी। बाद में उन्नीसवीं शताब्दी में जौन वाल्टर तृतीय ने, जो जौन वाल्टर द्वितीय का पुत्र था, रौटरी मुद्रण यन्त्रों का प्रारम्भ किया। इन मुद्रण यन्त्रों में कागज़ बड़े-बड़े ढोलों में से निरन्तर चलता रहता है। इन यन्त्रों में टाइप के चपटे फर्मों के स्थान पर बेलनों का प्रयोग किया जाता है, जिनमें गोल प्लेटें लगी होती हैं, जिन पर टाइप उभरे होते हैं। इन्हें 'स्टीरियो टाइप' प्लेट कहते हैं। इन प्लेटों को बनाने के लिए टाइप को एक फर्मे में जमाकर उसके ऊपर एक गीला गत्ता खूब ज़ोर से दबाया जाता है, जिससे उस गत्ते में टाइपों के अनुसार गड्ढे पड़ जाते हैं। फिर उस गत्ते को गोलाई में मोड़ लिया जाता है और उसमें पिघला हुआ सीसा भर दिया जाता है। आजकल रौटरी मुद्रण यन्त्रों से लाखों प्रतियां छपती हैं और दैनिक समाचार पत्रों के पाठकों तक पहुंचती हैं।

बैन्सले का ऋण चुकाने के बाद कोनिग और बौअर के पास केवल इतना पैसा बचा कि वे यूरोपीय महाद्वीप लौट सकें। बावेरिया में जाकर उन्होंने एक पुराने मठ की इमारत में यान्त्रिक मुद्रण यन्त्रों को बनाने का एक कारखाना स्थापित किया और किसानों के लड़कों को कारीगरी सिखाई। उन्होंने खूब अध्यवसायपूर्वक काम किया। उनका व्यवसाय खूब फला-फूला और वह आज तक विद्यमान है।

एक अन्य जर्मन युवक औटमार मर्गेन्थेलर ने, जो अमेरिका में जाकर बस गया था, एक मशीन का आविष्कार किया, जो टाइप को ठीक क्रम से लगा सकती थी—यह काम चार सौ से

अधिक साल तक हाथ से किया जाता रहा था। सन् १८८७ में यह मशीन–जो अपने ढंग की पहली थी–न्यूयार्क के 'ट्रिब्यून' समाचार पत्र में लगाई गई। इसका नाम 'लाइनोटाइप' रखा गया और यही नाम अब भी प्रचलित है। यह नाम इसलिए रखा गया, क्योंकि इसमें टाइपराइटर के कुंजीपटल जैसा एक कुंजीपटल होता है। इसकी कुंजियों को दबाने से सांचे एक पंक्ति में आ जाते हैं और फिर उन सांचों से सीसे की एक पूरी पंक्ति स्वयं ढल जाती है। यही वह मशीन थी, जिससे छपाई में 'आधुनिक युग' का सूत्रपात हुआ।

अध्याय २

# भाप और लोहा

यह सोचकर कुछ विचित्र-सा लगता है कि रसोईघर के बर्तनों में सबसे नया और आधुनिक बर्तन दबावपाची (प्रेशर कुकर) वस्तुतः २७५ वर्ष से भी अधिक पुराना है।

दबावपाची की कहानी वस्तुतः भाप के इंजिन की कहानी है। इसका प्रारम्भ सन् १६८० में एक दिन हुआ था, जब एक युवक फ्रांसीसी वैज्ञानिक देनी पापीन ने लन्दन में पाल माल पर एक बढ़िया मकान की रसोई में प्रवेश किया था। इस मकान में वह महान् वैज्ञानिक प्रोफेसर रौबर्ट बौयल के अतिथि और शिष्य के रूप में रह रहा था।

मौंसिय पापीन को उसके अपने आग्रह करने पर परिवार के लिए कुछ भोजन पकाने की अनुमति दे दी गई थी। वह अपने एक आविष्कार को अज़मा कर देखना चाहता था। यह आविष्कार उसने प्रोफेसर बौयल की प्रयोगशाला में किया था। यह एक नये प्रकार का खाना पकाने का बर्तन था, जो आम-तौर से प्रयुक्त होने वाली कड़ाहियों की अपेक्षा कहीं ऊंचा था और देखने में बर्तन कम और यंत्र अधिक मालूम होता था। यह एक लोहे का बना हुआ वाष्पित्र (बौयलर) था, जिसका

ढक्कन शिकंजों के द्वारा कस दिया जाता था। इसमें भाप के निकलने के लिए एक छोटी-सी कपाटी (वाल्व) भी लगी हुई थी।

## एक वैज्ञानिक भोज

इस यन्त्र से किए गए अपने पहले परीक्षण का वर्णन करते हुए पापीन ने बताया, "मैंने मांस की उन हड्डियों को और टांग के उस कठोरतम भाग को खाया, जो कि कभी उबाला नहीं गया था, बल्कि काफी समय तक सूखा रखा गया था। इनको एक छोटे से शीशे के बर्तन में थोड़ा-सा पानी डालकर रख दिया गया और उसके बाद उस बर्तन को इस इंजिन में रख दिया गया।"

उसके बाद उस इंजिन को आग के ऊपर चढ़ा दिया गया और पापीन बड़ी अधीरता से उसे देखता रहा। वह ३६ वर्ष का एक सुन्दर पुरुष था और वैज्ञानिक अनुसन्धान की उसमें विलक्षण प्रतिभा दिखाई पड़ती थी। वह फ्रांस के राज-दरबार के एक अधिकारी का पुत्र था और वह ह्यूजनो अर्थात् प्रोटेस्टैण्ट था। अपने से पहले के वैज्ञानिकों और आविष्कारकों की भांति वह भी भाप की शक्ति का प्रयोग किसी ऐसे इंजिन के लिए करना चाहता था, जिससे मनुष्य को अपनी मेहनत से कुछ मुक्ति मिल सके। परन्तु उसके परीक्षणों का पहला व्यावहारिक परिणाम यह 'अस्थिपाचक' था। अपने इस खाना पकाने के नये बर्तन का उसने यही नाम रखा था।

पापीन का विचार था कि जब खौलता हुआ पानी या



देनी पापीन अपना दबावपाची रौबर्ट बौयल को दिखा रहा है

रस किसी बर्तन में इस प्रकार बन्द कर दिया जाता है कि भाप बाहर न निकल सके, तब दवाव इतना अधिक हो जाता है कि भाप खौलने के बिन्दु से भी कहीं अधिक गरम हो जाती है—इसे आजकल हम 'अतितप्त भाप' कहते हैं। इस प्रकार उस बर्तन में रखी हुई हड्डियां केवल उबल ही नहीं जातीं, अपितु वाष्पतप्त हो जाती हैं और उससे कड़े से कड़ा मांस कुछ ही देर में नरम पड़ जाता है।

पापीन ने एक स्वतः चालित सुरक्षा कपाटी भी बनाई थी—यह एक ऐसा आविष्कार था कि केवल इसके कारण ही तकनीकी इतिहास में वह विख्यात हो सकता था। यह आविष्कार सारतः आजकल भी उसी रूप में चल रहा है। जब भाप का दबाव बहुत अधिक हो जाता है, तब यह सुरक्षा कपाटी स्वयं खुल जाती है।

प्रौफेसर बौयल इस तरुण आविष्कारक को रायल सोसाइटी में ले गया। वहां उसने इसके अस्थिपाचक यन्त्र को विद्वान व्यक्तियों को दिखलाया—यह प्रदर्शन भी भोजन के रूप में ही किया गया।

वहां उपस्थित सभी व्यक्तियों ने आविष्कारक को बधाई दी, परन्तु पापीन ने कहा : "मेरा विचार है कि यह यन्त्र भाप से चलने वाले इंजिन की ओर केवल पहला कदम है। मैं किसी न किसी दिन भाप के इंजिन का आविष्कार करके रहूंगा।"

इस पर वैज्ञानिकों ने असहमति सूचित करते हुए अपने सिर हिलाये और कुछ ने गम्भीरतापूर्वक पापीन को चेतावनी भी दी कि अब तक इस प्रकार का यन्त्र बनाने के जितने यत्न किये गये हैं, वे सबके सब व्यर्थ रहे हैं। यह ठीक है कि यह विचार बहुत प्राचीन था और यूनानी दार्शनिक हीरो वह पहला व्यक्ति था, जिसने इसे क्रियान्वित करके दिखाया था। उसने धातु का एक खोखला गोला बनाया था, जिसके दोनों ओर दो पतली नलियां बाहर को निकली हुई थीं। उसने इस गोले को आग के ऊपर इस तरह लटकाने की व्यवस्था की थी कि जिससे वह दो सिरों पर लटका रहकर सरलता से घूमता रह सके। जब इस गोले

के अन्दर पानी भर दिया जाता था और नीचे आग जलाकर गर्म किया जाता था, तब भाप उन पतली नलियों में से जोर से बाहर निकलती थी और आसपास की वायु को धक्का देती थी, जिससे वह गोला घूमने लगता था।

**लैंडग्रेव के दरबार में एक ह्यूजनो**

देनी पापीन का नाम उसके अस्थिपाचक—जिसे बाद में 'पापीन की हंडिया' कहा जाने लगा—के कारण सारे इंग्लैण्ड में विख्यात हो गया था और पापीन वहां सरलता से रहता रह सकता था, परन्तु उन्हीं दिनों फ्रांस के राजा ने नान्ते की राजाज्ञा को रद्द कर दिया। यह राजाज्ञा ह्यूजनो अर्थात् फ्रांस के प्रोटेस्टैण्ट लोगों को धार्मिक स्वतन्त्रता की गारंटी देती थी। अब उस राजाज्ञा के समाप्त हो जाने से पापीन की स्थिति एक निर्वासित व्यक्ति की-सी हो गयी।

जीवन के इस मोड़ पर जर्मनी के एक प्रोटेस्टैण्ट राजा हैस के लैंडग्रेव ने पापीन को मारबर्ग विश्वविद्यालय में एक अध्यापक का पद प्रस्तुत किया। पापीन ने इस आशा में इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया कि एक प्रबुद्ध राजा के आश्रय में रहते हुए वह अपनी महान् सूझ को क्रियान्वित कर सकेगा, जो एक ऐसा इंजिन बनाने की थी, जो किसी जहाज के चक्राकार चप्पुओं के पहियों को भाप से चला सके।

परन्तु लैंडग्रेव को उसके इस आविष्कार के सम्बन्ध में तनिक भी रुचि नहीं थी और पापीन को हर पेच और पेचकस के लिए मांगा-मांगी करनी पड़ती थी। वह अपने इस यन्त्र का

केवल एक छोटा सा नमूना बना पाने में सफल हुआ। इस यंत्र का नाम उसने 'वायुमंडलीय यन्त्र' रखा था। परन्तु उसने एक छोटी सी पुस्तिका में, जो १६९० में प्रकाशित हुई थी, इस यन्त्र का विस्तार से वर्णन किया। वस्तुतः यह पहला व्यावहारिक भाप से चलने वाला इंजिन था, जिसमें केवल एक बड़ा दोष था : वह दोष यह था कि यह अपने उचित समय से लगभग एक शताब्दी पहले बन गया था।

एक मामूली हवा खींचने के पम्प के सिलिंडर और पिस्टन का उपयोग करने की सूझ पापीन की ही थी, जिसका बाद में भाप के इंजिन बनाने वाले सभी लोगों ने प्रयोग किया। इस विधि में पिस्टन फैलती हुई भाप की क्रिया के फलस्वरूप ऊपर की ओर धकेला जाता है और उसके बाद एक दम ठण्डा कर देने के परिणामस्वरूप पिस्टन के नीचे शून्य स्थान (वैक्यूम) उत्पन्न हो जाता है; उससे पिस्टन फिर नीचे खिंच आता है, क्योंकि वायुमंडल का दबाव उसे नीचे दबा देता है। पापीन के इंजिन में ठंडा करने का यह काम ठंडे पानी की फुहार द्वारा करना पड़ता था।

निराश होकर आविष्कारक पापीन ने जर्मनी को छोड़कर इंग्लैंड लौट आने का निश्चय किया। उसने एक बड़ी नौका बनाई, जिसमें चप्पुओं के पहिये हाथ-चालित गरारियों द्वारा चलाये जाते थे (यह पद्धति उसने इंग्लैंड में प्रयोग में आती देखी थी)। परन्तु उसने इन चप्पुओं के पहियों को इस प्रकार बनवाया कि जिससे बाद में एक भाप का इंजिन उसमें इस प्रकार लगाया जा सके कि वह उन पहियों को घुमा सके। हैस में

उसकी सूझ के लिए सहायता नहीं मिल सकी, इसके विरुद्ध प्रतिवाद के रूप में पापीन ने यह निश्चय किया कि वह उस नौका को, जिसमें उसकी पत्नी और उसके कई बच्चे सवार थे, कैसल से लन्दन तक फूलडा नदी में, वैसर नदी में, हालैंड के समुद्र तट के साथ-साथ और इंगलिश चैनल के पार स्वयं ही चला कर ले जायगा।

वे बहुत दूर नहीं पहुंच पाये। अगले ही कस्बे मुंडेन में नाविकों के संघ ने उन्हें रोक लिया। कुछ वाद-विवाद हुआ, जिसमें बढ़ते-बढ़ते हाथापाई की नौबत आ पहुंची। नाविकों ने कुल्हाड़ियों से नाव को तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया।

पापीन बिल्कुल खाली हाथ लन्दन पहुंचा। रोजगार ढूंढने की उसकी चेष्टाएं व्यर्थ रहीं। पहले के मित्र या तो मर चुके थे या उसे भूल चुके थे। पांच वर्ष तक वह अपने परिवार का पेट पालने के लिए घोर संघर्ष करता रहा।

हमें मालूम नहीं कि पापीन की करुण कहानी का अन्त किस प्रकार हुआ और न यही मालूम है कि उसे किस जगह दफनाया गया। परन्तु उसके जीवन काल में ही एक अंग्रेज आविष्कारक ने पापीन की सूझों को अपना लिया था। कप्तान थामस सैवरी ने अपनी एक मशीन को पेटेण्ट कराया, जो खानों में से पानी निकालने का काम करती थी—यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण काम था—और उसने इस प्रकार के कई इंजिन बनाये, जिनसे उसे काफी लाभ हुआ।

फिर एक था थामस न्यूकमन। वह लुहार था और लोहे की ढलाई करता था और डार्टमाउथ में बैप्टिस्ट प्रचारक था।

जब उसने सैवरी की पानी निकालने की मशीन को देखा, तो उसे लगा कि वह उसमें कुछ सुधार कर सकता है और उसने सुधार किया भी। अठारहवीं शताब्दी के अधिकांश भाग में इंग्लैंड की खानों में सभी जगह न्यूकमन की मशीनें बहुत काम में आ रही थीं। परन्तु ये मशीनें इतनी सक्षम नहीं थीं कि उनसे जहाज चलाये जा सकें या मनुष्य को अन्य थकाने वाले बहुत-से कामों से छुटकारा मिल सके। ये मशीनें प्रति मिनट केवल बारह या पन्द्रह धक्के देती थीं। भाप के इंजिन का निर्माण तब तक के लिए रुका हुआ था, जब तक कि कोई तकनीकी प्रतिभाशाली व्यक्ति उसे एक ऐसे रूप में बनाने का जिम्मा न ले ले, जिससे कि जीवन का सारा ढांचा ही बदल जाना था।

## रविवार के अपराह्न में एक सैर

जेम्स वाट का जन्म क्लाइड नदी के किनारे ग्रीनोक नामक स्थान में हुआ था। वह एक जहाज के बढ़ई की पांचवीं सन्तान था। उसका स्वास्थ्य इतना दुर्बल था कि वह अन्य बालकों के साथ खेल भी नहीं सकता था और पढ़ने के लिए विद्यालय भी नहीं जा सकता था। उसने लिखना-पढ़ना घर पर रहकर अपनी माता से ही सीखा। कई सप्ताह तक लगातार उसे सिर दर्द होता रहता था, जिसके कारण वह कमरे से बाहर भी नहीं निकल पाता था। पर जिन दिनों वह बाहर जाने लायक होता था, उन दिनों वह अपने पिता के कारखाने में जाता और वहां अपनी इच्छा से ही काम करने लगता। उसने जहाजों के उपकरणों की मरम्मत शुरू कर दी। उसे जो भी पुस्तक मिलती

उसे वह बड़ी उत्सुकता से पढ़ डालता—विशेषरूप से प्राकृतिक विज्ञान की पुस्तकों को।

जब वह पन्द्रह वर्ष का था, तब तक भौतिकी के सम्बन्ध में जो कुछ ज्ञात था, वह लगभग सबका सब उसने पढ़ डाला था—यह १७५० के आसपास की बात है। उसके पिता ने उसे उच्च यन्त्र विज्ञान का अध्ययन करने के लिए प्रौफेसर डिक के पास ग्लासगो भेज दिया। डिक अपने आपको 'चश्मा बनाने वाला' कहता था, परन्तु चश्मे और दूरबीनें बनाने के अलावा वह मछली पकड़ने के कांटे और वायलिन भी बनाता था।

कुछ समय बाद प्रौफेसर डिक ने वाट को विश्वविद्यालय भवन में एक दूकान और एक प्रयोगशाला दिलवा दी। वहां वह एक औज़ार निर्माता और 'मशीनों के चिकित्सक' के रूप में काम करने लगा।

यह दूकान अच्छी चल निकली। वाट हर प्रकार की मरम्मत का काम करने लगा।

सन् १७६३ में एक दिन प्रसिद्ध प्रौफेसर ऐंडर्सन, जो ग्लासगो विश्वविद्यालय में प्राकृतिक विज्ञान का अध्यापक था, न्यूकमन के भाप के इंजिन का एक छोटा-सा नमूना लेकर उसके पास आया। इस छोटे इंजिन का उपयोग वह अपने अध्यापन के लिए किया करता था। यह इंजिन ठीक ढंग से काम नहीं कर रहा था। पिस्टन केवल कुछ धक्के देता और उसके बाद रुक जाता। जेम्स वाट को लगा कि ठीक इसी प्रकार की समस्याओं को तो हल करने में उसे आनन्द आता था।

यह इंजिन बिल्कुल सीधा-सादा था। इसमें एक छोटा-

सा वाष्पित्र था, जिसमें भाप बनती थी। एक सिलिंडर था, जिसके अन्दर एक पिस्टन और उसे जोड़ने की एक छड़ लगी हुई थी। सिलिंडर की तली में दो कपाटियां थीं। एक भाप को अन्दर आने देती थी, जो पिस्टन को ऊपर धकेल देती थी और दूसरी कपाटी ज्योंही पिस्टन अपने उच्चतम बिन्दु तक पहुंच जाता था, त्योंही ठंडे पानी की फुहार छोड़ती थी। इससे भाप ठंडी होकर पानी बन जाती थी; और क्योंकि भाप पानी की अपेक्षा १७०० गुना अधिक स्थान घेरती है, इसलिए पिस्टन के नीचे शून्य स्थान (वैक्यूम) उत्पन्न हो जाता था और क्योंकि आस-पास की वायु उस शून्य स्थान को भरने का प्रयत्न करती थी, इसलिए उसके दबाव से पिस्टन फिर नीचे आ जाता था।

वाट को बहुत जल्दी ही यह बात समझ में आ गई कि मशीन में खराबी क्या है। उसमें बहुत कम भाप बनती थी और उसके लिए बहुत अधिक ईंधन खर्च करना पड़ता था। वाट ने सोचा कि शायद भाप का पर्याप्त ढंग से ठीक-ठीक उपयोग नहीं हो पाता। उसे लगा कि भाप को सिलिंडर में ठंडा पानी छिड़क कर घनीभूत करने का न्यूकमन का तरीका शून्य स्थान उत्पन्न करने का एक बहुत ही अपरिष्कृत तरीका है। इसके लिए कोई अन्य उपाय हो सकना चाहिए।

जेम्स वाट ने कुछ समय बाद लिखा: "सन् १७६५ में एक दिन रविवार को अपराह्न में मैं सैर के लिए गया था और स्वभावतः मेरे मस्तिष्क में वे परीक्षण घूम रहे थे, जिनमें मैं सिलिंडर में ऊष्मा की बचत करने के उद्देश्य से जुटा हुआ था। उस समय मुझे यह बात सूझी कि क्योंकि भाप लचकदार वाष्प

है, इसलिए वह फैलेगी और पहले से खाली किये हुए स्थान की ओर तेजी से जायेगी; और यदि मैं किसी एक अलग बर्तन में शून्य स्थान बना रखूं और उस बर्तन और सिलिंडर की भाप के बीच एक नली खोल दूं, तो वह भाप उस शून्य स्थान में आ जायेगी।"

इसका अर्थ यह था कि पिस्टन के प्रत्येक धक्के के बाद सिलिंडर के अन्दर का तापमान भाप को जमा कर पानी बनाने के बिन्दु तक नीचे नहीं गिराना पड़ेगा, अपितु भाप को जमाने का यह काम इंजिन के एक अन्य भाग में किया जा सकता है।

इस नये उपाय, अर्थात् पृथक् वाष्प जमाने के उपकरण की सफलता इतनी अधिक रही कि उससे स्वयं वाट भी चकित रह गया। अब यह इंजिन पहले जितने ही ईंधन से पहले की अपेक्षा चौगुने समय तक काम करने लगा।

इस इंजिन में एक और बड़ा सुधार वाट की इस सूझ से हुआ कि पिस्टन को भाप के दबाव और वैक्यूम की क्रिया की सहायता से केवल ऊपर की ओर ही नहीं, अपितु नीचे की ओर भी चलाया जाये। भाप को सिलिंडर में बारी-बारी से पिस्टन के ऊपर और नीचे की ओर छोड़ने की व्यवस्था करके उसने पिस्टन को ऊपर और नीचे दोनों ओर चलाने की विधि निकाल ली। इस प्रकार वाट ने एक ऐसा सक्षम यन्त्र तैयार कर दिया, जो मानवता की सेवा के प्रयोग में लाये जाने के लिए तैयार था।

**पहले-पहल भाप से चलने वाले जहाज**

परन्तु मनुष्य जाति को अपने भावी सौभाग्य का—ग्लासगो

में जेम्स वाट के कारखाने में बने इंजिन के उस छोटे से नमूने का कुछ भी पता न था।

इसका कारण यह था कि यूरोप उस समय भी सामन्तवादी युग में रह रहा था। उच्च वर्ग—राजा, सामन्त और धर्म पुरोहित को, जो सब देशों पर शासन कर रहा था और शासक होने के लाभ प्राप्त कर रहा था, जिन-जिन भी वस्तुओं की आवश्यकता थी, वे सब उसे प्रभूत मात्रा में उपलब्ध थीं। ये वस्तुएं 'निम्नतर वर्गों', किसानों और कारीगरों के श्रम से प्राप्त की जाती थीं। फिर श्रम को बचाने वाली मशीन जैसी किसी वस्तु की आवश्यकता ही क्या थी। ऐसी मशीनों से तो ये लोग सुस्त पड़ने लगेंगे, उनके मस्तिष्कों में खतरनाक विचार भरने लगेंगे और उनको भी वे 'विलास की वस्तुएं' प्राप्त होने लगेंगी, जिन्हें कि शासक वर्ग केवल अपने तक ही सीमित रखना चाहता था।

परन्तु दुनिया की कोई शक्ति समाज की प्रगति और विकास को रोकने में समर्थ नहीं थी। एक नया सामाजिक स्तर, मध्यम वर्ग, ऐसे ऊर्जस्वी और मेधावी लोगों के नेतृत्व में स्वतन्त्रता पाने के लिए आन्दोलन और संघर्ष करने लगा था, जो यह समझते थे कि भाप का इंजिन एक ऐसा शक्तिशाली शस्त्र है, जो समाज का सुधार—औद्योगिक क्रान्ति करने में सफल हो सकता है।

इन लोगों में मैथियास बोल्टन भी था, जो बर्मिंघम के निकट सोहो नामक स्थान में मशीनें बनाने का काम करता था। उसने जेम्स वाट को अपना साझीदार बना लिया और

उन दोनों ने मिल कर संसार में पहला भाप का इंजिन बनाने का कारखाना बनाया।

बहुत शीघ्र ही बोल्टन और वाट का कारखाना विख्यात हो गया और सारे यूरोप और अमेरिका से इंजीनियर इस नये विचित्र भाप के इंजिन को देखने और उसकी खरीद के लिए आदेश देने वहां आने लगे। उसके कुछ वर्ष बाद एक भाप के इंजिन ने एक खान के गहरे गड्ढे में से पत्थर के कोयले से भरे हुए डब्बे पहले-पहल ऊपर खींचे और पहली तेल निकालने की मिल को इस ढंग से रूपान्तरित कर दिया गया कि उसमें भाप की शक्ति का उपयोग किया जा सके और पहली बार भाप की शक्ति से चलने वाला हथौड़ा अपनी विशाल निहाई पर आकर पड़ने लगा।

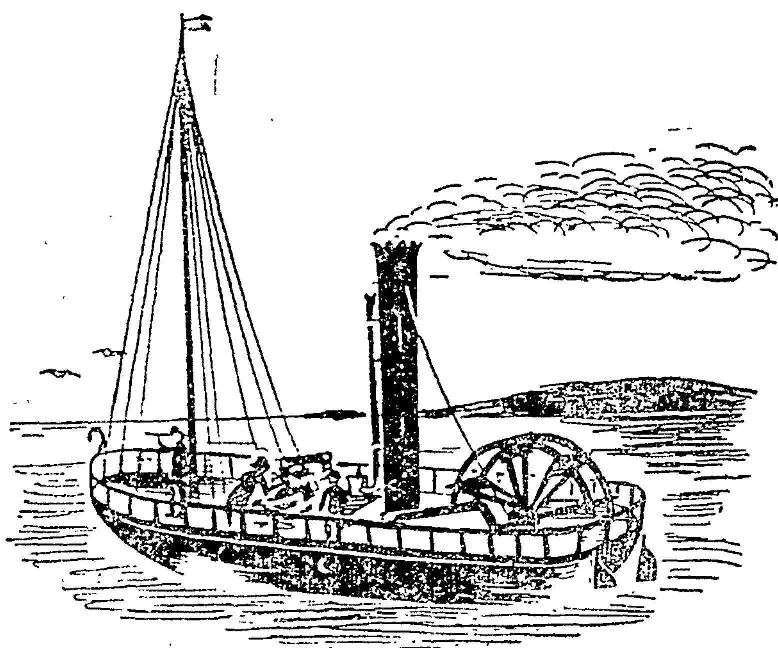
बोल्टन और वाट की व्यवसाय संस्था खूब धन कमाने लगी और धीरे-धीरे जेम्स वाट इस विचित्र अनुभूति का अभ्यस्त हो गया कि अब उसे अपनी नित्यप्रति की आवश्यकताओं के लिए काम करने की आवश्यकता नहीं रही है।

जब सन् १८०० में उसका पेटेन्ट का एकाधिकार समाप्त हुआ, तब उसकी आयु ६४ वर्ष थी। उसने कार्य से निवृत्त हो जाने का निश्चय किया। परन्तु वह ८३ वर्ष की परिपक्व आयु तक जीवित रहा और सन् १८१९ में उसकी बहुत शान्तिपूर्वक मृत्यु हुई।

उसे इतना लम्बा आयुष्य मिला कि वह यान्त्रिक युग के प्रारम्भिक वर्षों और भाप की शक्ति द्वारा परिवहन के आरम्भ को अपनी आंखों से देख सका। महत्वाकांक्षी आविष्कारकों ने

बार-बार देनी पापीन की सूझ के आधार पर भाप से चलने वाले जहाज बनाने का यत्न किया था, परन्तु केवल जेम्स वाट द्वारा तैयार किये गये इंजिन से ही इस कार्य में भाप की शक्ति के उपयोग की व्यावहारिक आशा बंधती थी।

यह सिद्ध करने का, कि दृश्यमान भविष्य में समुद्र में याता-यात का एकमात्र साधन भाप से चलने वाला जहाज ही होगा, ज़िम्मा एक अमेरिकन के सिर पड़ा। उसका नाम रौबर्ट फुल्टन था। शत्रुता और दुर्भाग्य का सामना करते हुए भी जो वह अपने कार्य में सफल हो सका, उसका श्रेय मुख्य रूप से उसकी उस दृढ़ इच्छा शक्ति और अजेय ऊर्जा को है, जो उसके अनेक



फुल्टन की भापचालित नौका (१८०७)

देशवासियों में दिखाई पड़ती है। वह कोई ऐसा आदर्शवादी नहीं था, जो अपने महान् आविष्कार से मानव जाति का भला करने का इच्छुक हो; वह तो एक महत्वाकांक्षी आविष्कारक और सफलता पाने पर तुला हुआ इंजीनियर था। उसने अपने जीवन का प्रारम्भ पैन्सिलवैनिया में एक चित्रकार के रूप में किया था। उसके बाद वह कला का अध्ययन करने इंग्लैंड गया, परन्तु वहां उसने इंजीनियरिंग सीखना शुरू कर दिया। उसने 'डी' नदी के ऊपर एक छोटी-सी नहर बनाई; नहरों द्वारा यातायात को आधुनिक रूप देने के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी और उसके बाद प्राकृतिक दृश्य का एक विशाल चित्र बनाने के लिए निमन्त्रण पाकर वह पारी (पेरिस) चला गया।

यहां पहुंच कर उसकी रुचि जहाजों की ओर हो गई। परन्तु उसकी पहली सूझ यह थी कि वह फ्रांसीसियों के लिए एक पनडुब्बी बनाये, जिससे नैपोलियन अंग्रेजों पर पानी के नीचे से आक्रमण कर सके, क्योंकि नैपोलियन ने यह अनुभव कर लिया था कि पानी के ऊपर अंग्रेजों को जीता नहीं जा सकता। नैपोलियन ने फुल्टन की योजनाओं में बहुत रुचि दिखाई, परन्तु अन्त में फ्रांसीसी नौसेना के अधिकारियों ने निश्चय किया कि वे युद्ध में ऐसी बर्बरतापूर्ण पद्धति पर नहीं उतरेंगे।

पारी (पेरिस) में रहते हुए फुल्टन की मित्रता पारी-स्थित अमेरिका के राजदूत रौबर्ट लिविंगस्टन से हो गई थी। लिविंगस्टन को न केवल भापचालित जहाज बनाने के सम्बन्ध में उत्साह था, अपितु उसके पास उन्हें बनवा पाने के साधन भी थे।

उन्होंने एक पुराना वाट का इंजिन खरीद लिया और उसे एक जहाज में लगवाया। परन्तु इंजिन बहुत भारी था और जहाज की तली ही निकल गई। इंजिन पानी में डूब गया। तब एक और इंजिन खरीदा गया और उसे एक और नौका में लगाया गया। इस बीच में फुल्टन सहायता लेने के लिए नैपोलियन से मिला था। उस महान व्यक्ति ने पहले इस आविष्कारक की योजनाओं में बहुत रुचि दिखाई थी, परन्तु बाद में उसके वैज्ञानिकों ने एक बड़ी सन्देहोत्पादक रिपोर्ट उसके सामने प्रस्तुत की। नैपोलियन जल्दी ही प्रभावित हो जाता था और जब फुल्टन उससे मिला, तो नैपोलियन ने कचोटते हुए व्यंग के साथ उससे पूछा : "अच्छा, तो तुम चिलम के धुएं से पानी का जहाज चला लेना चाहते हो?"

फिर भी फुल्टन और लिविंगस्टन इस नये जहाज के बारे में अपने परीक्षणों में लगे रहे। यह जहाज सीन नदी में कुछ यात्रियों को लेकर इधर-उधर गया। किनारे पर पारीवासियों की एक उत्साही भीड़ खड़ी इस जहाज को देख रही थी। ये लोग उस विचित्र जहाज को देखने आये थे, जो हवा और पालों के बजाय 'खौलते हुए पानी' से चलता था।

कुछ ही समय बाद लिविंगस्टन और फुल्टन को अमेरिका की सरकार से भाप के जहाजों के परीक्षणों को और आगे बढ़ाने के लिए कुछ धन मिल गया और उन्होंने अमेरिका लौटने का निश्चय किया। लौटते समय रास्ते में फुल्टन सोहो में स्थित बोल्टन और वाट के कारखाने में गया और वहां उसने एक बीस अश्व शक्ति का इंजिन खरीदने के लिए आदेश दिया। जिस

समय यह इंजिन बन रहा था, उस समय न्यूयार्क में 'ईस्ट' नदी पर एक जहाज बनाने के कारखाने में वस्तुतः भाप से चलने वाले प्रथम जहाज की तली तैयार की जा रही थी। यह जहाज सन् १८०७ की वसन्त ऋतु में पानी में उतारा गया। यह १५० टन का भाप से चलने वाला जहाज था। इसका नाम लिविंगस्टन के जन्म स्थान के ऊपर 'क्लैमौंट' रखा गया।

१७ अगस्त १८०७ को क्लैमौंट ने हडसन नदी में न्यूयार्क से अल्बेनी तक अपनी पहली यात्रा की। यह दूरी १५० मील की थी। क्लैमौंट ३२ घंटे में अपने लक्ष्य स्थान तक पहुंच गया। पहले भापचालित जहाज के विचित्र और भयावने दृश्य ने—जैसा कि एक समाचार-पत्र के संवाददाता ने उसका वर्णन करते हुए लिखा था: "एक भयानक दैत्य ने, जो लहरों पर आगे बढ़ता और आग उगलता अपने पथ को प्रकाशित करता हुआ आगे बढ़ रहा था—हडसन नदी में अन्य जहाजों के नाविकों को आतंकित कर दिया। अमेरिका ने क्लैमौंट को 'फुल्टन की मूर्खता' कहा। परन्तु इस क्लैमौंट से फुल्टन और लिविंगस्टन को यश भी मिला और आर्थिक सफलता भी।

फुल्टन ने १५ से भी अधिक भापचालित जहाज बनाये। उनमें से कुछ युद्धपोत भी थे, जो अमेरिका की सरकार के लिए बनाये गये। फुल्टन की मृत्यु सन् १८१५ में हुई। उस समय उसकी आयु केवल ५० वर्ष थी। इसके कुल चार वर्ष बाद भाप की शक्ति की सहायता से पहले जहाज ने अतलांतक समुद्र को पार किया।

**भाप का सर्कस**

जब सन् १८०० में जेम्स वाट का पेटेन्ट का अधिकार समाप्त हो गया और हर किसी व्यक्ति को भाप के इंजिन बनाने की छूट हो गई, तब रिचर्ड ट्रैविथिक ने, जो खान में काम करने वाला एक इंजीनियर था और जिसे भाप के इंजिनों का चाव था, अपने कारखाने में उनके कुछ नमूने बनाये और उन्हें चलाया। वह कौर्नवाल में कैम्बोर्न में रहता था और वहां वह अपने मित्रों को अपनी छोटी-छोटी भाप से चलने वाली गाड़ियां दिखाया करता था, जो एक मेज़ के चारों ओर चक्कर लगाया करती थीं। उसका स्वप्न सड़क परिवहन के लिए एक बड़ा भाप का इंजिन बनाने का था और वह उसने सन् १८०१ में बना डाला। यह एक विशाल लोहे की गाड़ी थी, जिसमें कोई घोड़ा नहीं जोता जाता था। इसकी चिमनी गाड़ी के बीचोंबीच थी और उसके चारों ओर यात्रियों के बैठने के लिए गद्दियां बनी थीं। चालक इंजिन को चलाने वाले पहिये के पास खड़ा होता था और उसके पीछे कोयला झोंकने वाले व्यक्ति के खड़े होने के लिए स्थान था। ट्रैविथिक ने इस गाड़ी का नाम रखा—'फुफकारता दानव।'

१८०१ में मुक्केबाजी दिवस (बौक्सिंग डे) पर उसने कुछ मित्रों को भाप-गाड़ी में पहली बार सवारी करने के लिए निमन्त्रित किया। कोई ३०० गज तक अच्छी चाल से चलने के बाद इंजिन खराब हो गया और उस गाड़ी को खींच कर एक सराय में गाड़ियां खड़ा करने के स्थान में खड़ा कर दिया गया। ट्रैविथिक और उसके मित्र हंस के कबाब और मदिरा पान का

आनन्द लेने लगे। एकाएक खिड़की में से कुछ जलने की सी गन्ध आई। ट्रैविथिक इंजिन की आग को बुझाना भूल गया था। गाड़ी के वाष्पित्र (बौयलर) में पानी सूख गया और इंजिन तप कर लाल हो गया, जिससे गाड़ीघर में आग लग गई। इस आग में यह इंजिन और गाड़ीघर, दोनों ही पूरी तरह ज़ल कर स्वाहा हो गये।

परन्तु ट्रैविथिक ने एक और भाप-गाड़ी बनाई। वह इसे चला कर लन्दन तक ले गया। परन्तु वहां तक पहुंचते-पहुंचते यह इंजिन बिल्कुल बेकार हो गया और वहां उसे एक पुरानी चक्की में लगा दिया गया।

सन् १८०४ में उसने वेल्स में स्थित पैनीडैराइन नामक लोहे के कारखाने के लिए एक इंजिन बनाया। यह लोहे की पटरियों पर चलता था और १० मील लम्बी रेल लाइन पर १० टन खनिज लोहे और ७० यात्रियों को पांच डिब्बों में लाद कर ५ मील प्रति घंटे की चाल से चलता था; परन्तु यह इंजिन बहुत दिनों तक काम नहीं कर सका, क्योंकि लोहे की पटरियां अच्छी नहीं थीं और उनके कारण पहिये जल्दी घिस जाते थे।

इस इंजिन को ट्रैविथिक के एक युवक मित्र ने बहुत ध्यान से देखा था। उसका नाम जौर्ज स्टीफिंसन था। वह नौर्दम्बर-लैंड का निवासी था और इंजिन में कोयला झोंकने का काम करता था। वह बहुधा आविष्कारक ट्रैविथिक के घर अपनी पत्नी और अपने छोटे से पुत्र रौबर्ट के साथ आया करता था। ट्रैविथिक प्रायः उस छोटे बालक को अपने घुटनों पर झुलाया करता, परन्तु उसके पिता जौर्ज स्टीफिंसन के साथ वह भाप के

इंजिन को परिवहन का साधन बनाने के सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया करता।

सन् १८०८ की ग्रीष्म ऋतु में जनता की रुचि को जाग्रत करने के लिए रिचर्ड ट्रैविथिक ने लन्दन में यूस्टन स्क्वेयर में एक 'भाप का सर्कस' खोला। यह स्थान उस जगह से पास ही था, जहां अनेक वर्ष बाद यूस्टन स्टेशन बनाया गया। यहां रेल की पटरियां एक बड़े गोले के रूप में बिछाई गई थीं और उन पर एक रेलगाड़ी चलती थी। एक बार की सैर के लिए एक शिलिंग देना पड़ता था। धन्धा बुरा नहीं रहा। लन्दनवासियों की भीड़ की भीड़ 'भाप के सर्कस' में जमा रहती। परन्तु कुछ सप्ताह बाद इंजिन का एक पहिया टूट गया, इंजिन उलट गया और यह उपक्रम समाप्त हो गया। सौभाग्य से किसी व्यक्ति को गहरी चोट नहीं आई।

सन् १८१३ में ट्रैविथिक दक्षिण अमेरिका चला गया। परन्तु वहां भाग्य ने उसका साथ नहीं दिया। सन् १८३३ में बड़ी गरीबी में उसकी मृत्यु हुई।

इस बीच में रेलमार्ग और भापचालित परिवहन के लिए संघर्ष का काम उसके मित्र जौर्ज स्टीफिंसन ने संभाल लिया था। स्टीफिंसन का जन्म सन् १७८१ में 'वाइलन औन टाइन' में हुआ था। उसका पिता, जिसे लोग 'ओल्ड वौब' कहा करते थे, एक खदान में पानी निकालने के इंजिन में कोयला झोंकने का काम किया करता था, जिसके लिए उसे प्रति सप्ताह १२ शिलिंग वेतन मिलता था, उसके ६ बच्चे थे, जिनमें से कोई भी विद्यालय नहीं जा पाया। परिवार को भुखमरी से बचाने के

लिए उन सभी को धन कमाने के लिए कठोर परिश्रम करना पड़ता था। जौर्ज स्टीफिंसन ने अपनी सबसे पहली नौकरी ८ वर्ष की आयु में शुरू की। उसे एक विधवा महिला की गौओं और बत्तखों की देखरेख करनी पड़ती थी। यह महिला कोयला ढोने के लिए बनाई गई रेल लाइन के निकट रहती थी। इस रेल लाइन पर डिब्बों को घोड़े खींचते थे। स्टीफिंसन का काम गौओं और बत्तखों की रखवाली करना था, जिससे वे रेल लाइन पर न चली जायें। इसके लिए उसे दो आने रोज़ मिलते थे। इस रेल लाइन की बहुत गहरी छाप बालक स्टीफिंसन के मन पर पड़ी और वहीं से उसके अनेक विचारों और सूझों का सूत्रपात हुआ। ६ वर्ष की आयु में एक कोयला छांटने वाले मजदूर के रूप में उसे कोयले की खान के अन्दर काम करने जाना पड़ा। उसके बाद वह सहायक कोयला झोंकने वाला बन गया और अपने पिता के साथ काम करने लगा।

१७ वर्ष की आयु में उसे उसी न्यूकमन पम्प पर इंजिन की देख-भाल करने का काम दे दिया गया, जिसमें उसका पिता कोयला झोंकता था। यहां उससे आशा की जाती थी कि यदि उस इंजिन में कोई खराबी आ जाये, तो वह जाकर इंजीनियर को बुला लाये। परन्तु वह स्वयं ही मरम्मत करके इंजिन को फिर चालू कर लेता था। अन्त में वह इतना काफी पैसा कमाने लगा कि एक सायंकालीन विद्यालय में पढ़ने जा सका। उस समय १८ वर्ष की आयु में भी वह न पढ़ना जानता था, न लिखना। जब १९ वर्ष की आयु में वह पहली बार अपना नाम लिख पाने में समर्थ हुआ, तो वह उसके जीवन के सबसे अभि-

मानपूर्ण दिनों में से एक था।

उसने अनेक खदानों में काम किया और उसका यत्न सदा यह रहता था कि वह किसी तरह इंजिनों के अधिक से अधिक निकट रह सके। शीघ्र ही इस सम्बन्ध में उसका ज्ञान उन इंजीनियरों की अपेक्षा भी कहीं अधिक हो गया, जो यन्त्र-शास्त्र और विज्ञान पढ़ कर आते थे। वैस्टमूर में किलिंगवर्थ नामक स्थान में, जहां वह अनेक वर्षों तक इंजिन की देखभाल करने वाले और ब्रेक लगाने वाले के रूप में काम करता रहा था, लोग उसे 'इंजिन चिकित्सक' कहने लगे थे। अब उसके पास काफी पैसा आ गया था, इसलिए उसने निश्चय किया कि वह अपने पुत्र रौबर्ट को उसकी अपेक्षा अच्छी शिक्षा दिलवायेगा, जितनी कि वह स्वयं पा सका था। रौबर्ट ने बाद में अपना बदला अपने पिता को इस रूप में चुका दिया कि जो कुछ उसने पढ़ा था, उसमें से बहुत कुछ उसने अपने पिता को भी बताया और वे दोनों प्रायः किसी पुस्तक या आरेख ( रेखाचित्र ) को लेकर साथ बैठे विचार-विमर्श करते दिखाई पड़ते थे।

किलिंगवर्थ खदान का मालिक लार्ड रेवन्सवर्थ एक ऐसा व्यक्ति था, जिसकी रुचि अपनी खान में केवल इतनी ही नहीं थी कि उसमें से अधिक से अधिक पैसा कमाया जाये। जब उसने सुना कि उसका 'इंजिन चिकित्सक' एक ऐसी 'यात्रा मशीन' बनाने की योजना तैयार कर रहा है, जो 'ट्राम की पटरी' पर खान से लेकर नहर तक कोयले की गाड़ियों को खींचने वाले घोड़ों का स्थान ले लेगी, तो उसने स्टीफिंसन से बात की। स्टीफिंसन ने लार्ड रेवन्सवर्थ को बताया कि उसने भाप के

इंजिनों की, डिब्बों की, ट्राम की पटरियों की, पहियों की, रगड़ और गुरुत्वाकर्षण की समस्याओं का गहरा अध्ययन किया है। वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि भविष्य का यातायात मुख्यतया इंजिनों द्वारा किया जायेगा और वह रेल की पटरियों पर होगा।

## कोयला झोंकने वाला पार्लियामेंट में

जब लार्ड रेवन्सवर्थ ने स्टीफिसन से एक इस प्रकार का इंजिन बनाने को कहा, तो स्टीफिसन को बहुत प्रसन्नता हुई। वह अपने इस नये काम में बड़े उत्साह के साथ जुट गया। कुछ ही महीनों में उसका पहला इंजिन, जिसका नाम 'ब्ल्यूशर' रखा गया था, खदान में रेल की पटरियों पर ३० टन कोयला लेकर प्रति घंटा ४ मील की चाल से चलने लगा। यह सन् १८१४ की बात है। उसके एक वर्ष बाद उसने एक और इंजिन बनाया, जो कहीं अधिक कार्यक्षम था और उसका खर्च घोड़ों की अपेक्षा कहीं कम पड़ता था।

अब तो अन्य खान-मालिकों ने भी स्टीफिसन को अपनी खानों के लिए इस प्रकार के इंजिन बनाने का काम सौंपा और इस प्रकार स्टीफिसन अपना कारखाना स्थापित करने में समर्थ हुआ। परन्तु उन दिनों भी इन यन्त्रों के प्रति जनता में कोई दिलचस्पी नहीं थी। ये इंजिन भी इससे पहली शताब्दी के भाप के इंजिनों की भांति खानों तक ही सीमित थे। परन्तु अन्त में एक इसी प्रकार की खदान में बनी रेल लाइन ने भाप की शक्ति से कोयला ढोने और यात्रियों को लाने ले जाने के

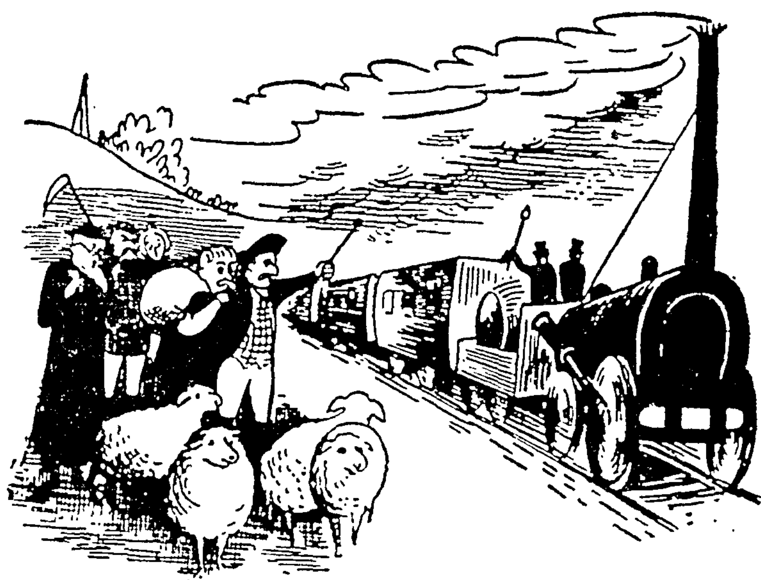
बीच की खाई को पाटने का काम किया। यह लाइन विशप औकलैंड घाटी में स्टौकटन और डार्लिंगटन के बीच बनी थी। जौर्ज स्टीफिंसन ने एक ऐसा इंजिन बनाने का ज़िम्मा लिया, जो ५९ घोड़ों का काम कर सके। जब सितम्बर १८२५ में इस लाइन का उद्घाटन हुआ, तब स्टीफिंसन का इंजिन, जिसे वह स्वयं चला रहा था, ३८ डिब्बों की एक रेलगाड़ी को खींचकर ले गया। इनमें से २२ डिब्बे यात्रियों से भरे हुए थे, जिनकी संख्या कुल मिलाकर ४५० थी। पहली बार इतनी बड़ी संख्या में लोगों ने एक नई रहस्यमयी शक्ति—भाप—द्वारा चालित गाड़ी में यात्रा का आनन्द लिया।

उनमें से अनेकों को शुरू में कुछ बेचैनी हुई होगी। 'सर्वज्ञों' और 'लाल बुझक्कड़ों' ने तरह-तरह की चेतावनियां दी थीं। परन्तु कुछ क्षण की घबराहट के बाद उन्हें वेग की आश्चर्यजनक अनुभूति होने लगी। उन्होंने देखा कि पेड़, मकान और चरागाह पीछे की ओर दौड़ रहे हैं; घोड़े बिदक रहे हैं; गौएं डर कर रंभा रही हैं। सड़कों के पास खड़े हुए खान-मजदूर और किसान उस युग के उस चमत्कार को आश्चर्य से चकित होकर देख रहे थे। बच्चे उत्साह से हाथ हिला रहे थे और माताएं अपने बच्चों को पटरी से दूर रखने की कोशिश कर रही थीं। घू-घू और सांय-सांय करती, गरजती और घड़घड़ाती वह रेलगाड़ी तेज़ी से दौड़ने लगी—इतनी तेज़ कि तेज़ से तेज़ डाक-घोड़ा-गाड़ी भी नहीं दौड़ सकती थी।

यह स्टीफिंसन की पूरी जीत थी।

इस बीच में एक बड़े नगर से दूसरे बड़े नगर तक (मैनचेस्टर

से लिवरपूल तक) यात्रियों और सामान को लाने ले जाने के लिए रेल लाइन बनाने की योजना पार्लियामेंट के सामने प्रस्तुत



प्रारम्भिक रेलगाड़ी

की गई थी। इस सम्बन्ध में कठोर संघर्ष की सम्भावना थी, क्योंकि इस रेल लाइन के बनने का अर्थ था कि ब्रिजवाटर नहर का कामकाज बहुत कम हो जाये। यह ब्रिजवाटर नहर इन दोनों शहरों को, और विशेषरूप से ब्रिजवाटर के ड्यूक की खानों को बन्दरगाह से मिलाती थी। इंग्लैंड के कुछ सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति इस नहर के अंशधारी थे और उन्हें लगता था कि यदि नौर्दम्बरलैंड के इस कोयला झोंकने वाले की योजना सफल हो गई, तो उन्हें होने वाला लाभ समाप्त हो जायेगा। उन्होंने सोचा कि अच्छा यह रहेगा कि पार्लियामेंट की जिस

समिति को यह मामला निर्णय के लिए सौंपा गया था, उसकी वैठक में स्टीफिंसन को बुलाया जाये और तब पार्लियामेंट में उसे हास्यास्पद बनाकर उसके पक्ष को नीचा दिखाया जाये।

स्टीफिंसन वैस्टमिस्टर—वह भवन जहां इंग्लैंड की पार्लियामेंट वैठती है—गया। उस भवन में ऐसी आकृति कभी मुश्किल से ही दिखाई पड़ी होगी। वह उन लोगों में से था, जो अपने कुल को छिपाते नहीं। वह प्रौढ़ आयु का सशक्त पुरुष था, जो घोड़े की तरह बलिष्ठ था। उसकी वेशभूषा सामान्य थी और उसके हाथ खूब बड़े-बड़े थे। उसकी आंखें चमकीली और मुस्कान आशाभरी थी। किसी भी निष्पक्ष व्यक्ति की दृष्टि में वह बहुत बढ़िया आदमी जंचता, परन्तु अपने विरोधियों की दृष्टि में वह बहुत ही घिनौना व्यक्ति था। पार्लियामेंट में जो लोग स्टीफिंसन के मित्र थे, उन्हें भी यह भय था कि उसकी स्पष्टवादिता के कारण उसका मामला बिल्कुल बिगड़ जायेगा।

उससे जिरह शुरू हुई। बाद में स्टीफिंसन ने बताया : "अभी मुझे पार्लियामेंट में घुसे कुछ ही देर हुई थी कि मेरी यह इच्छा होने लगी कि किसी तरह यहां से निकल भागने के लिए कोई रास्ता मिल जाये, तो भला हो।" जो ऐतराज़ उठाये गये और जो प्रश्न पूछे गये, वे ऐसे थे, जिनसे कोई भी व्यक्ति हिम्मत हार जाता। रेलगाड़ी के भयानक दृश्य को देखने के बाद गौएं दूध देना और मुर्गियां अंडे देना बन्द कर देंगी; इंजिन की चिमनी में से निकलने वाली ज़हरीली वायु के कारण पक्षी मर जायेंगे; इंजिन से निकलने वाली चिनगारियों से मकानों को आग लग जायेगी; घोड़ों के लिए कोई काम न रहेगा और इसलिए वे मर

जायेंगे; जई और घास का खरीददार कोई न रहेगा; गाड़ीवान और सड़कों पर बनी सरायों के भटियारे भिखारी बन जायेंगे; सड़कों पर लोग न चलेंगे और उन पर डाकुओं की भरमार हो जायेगी; इंजिनों के वाष्पित्र फट जायंगे और खौलता हुआ पानी यात्रियों पर पड़ेगा, जिससे जल कर वे मर जायंगे; या फिर वे पागल हो जायंगे; क्योंकि कोई भी व्यक्ति प्रति घंटे १० मील से अधिक के वेग को सह ही नहीं सकता।

स्टीफिंसन ने उसकी रेलगाड़ी पर किये गये इन आक्षेपों का एक-एक करके खंडन करने का यत्न किया। उसका लहजा उत्तरी ज़िलों का था, इसके कारण उससे यहां तक पूछा गया कि कहीं वह विदेशी तो नहीं है। "घोड़ों का बिदकना? कुछ घोड़े तो ऐसे होते हैं कि वे हाथ ठेले को देखकर भी बिदकते हैं" उसने उत्तर में कहा। एक व्यक्ति ने उसे याद दिलाया कि एक अन्य इंजीनियर द्वारा बनाया गया एक इंजिन इसलिए फट गया था क्योंकि उसके परिचर ने शराब पी हुई थी और इस कारण उसने भाप के दबाव को खतरे के बिन्दु से ऊपर चला जाने दिया।

स्टीफिंसन ने हँसते हुए कहा: "इसके लिए दोष शराब को देना चाहिए, न कि भाप को।"

उससे पूछा गया: "यदि कोई गाय भूली-भटकी रेल की पटरी पर आ पहुंची और इंजिन के आगे आ गई, तो क्या वह गाय के लिए बहुत बुरा न होगा?"

स्टीफिंसन ने अपने नौर्दम्बरलैंड के लहज़े में कहा: "गऊ के लिए तो जरूर बहुत बुरा होगा।"

फिर भी वह मामला हार गया। कारण यह था कि वह इतना अबुद्धिमान था कि उसने यह कह दिया : "मैं यह समझता हूं कि १२ मील प्रति घंटे तक की चाल व्यवहार में लाने में कोई भी हर्ज नहीं है।" उसकी इस उक्ति के कारण समिति के सदस्यों को लगा कि वह या तो धूर्त ठग है और या फिर खतरनाक मूर्ख।

## रेनहिल की दौड़

पार्लियामेंट में अब नया रेलवे विधेयक कम से कम एक साल बाद ही प्रस्तुत किया जा सकता था। डार्लिंगटन-स्टौकटन रेल लाइन के अच्छे काम-काज के फलस्वरूप स्टीफिंसन के पक्ष में वातावरण बनने में सहायता मिली थी। इस बीच में मैनचेस्टर से लिवरपूल तक की रेल लाइन के लिए सर्वेक्षण कर लिया गया था—इसमें कुछ कठिनाई अवश्य हुई थी, क्योंकि नहर के प्रबन्धकों ने ऐसे किसानों की एक पूरी सेना की सेना भरती कर ली थी, जो स्टीफिंसन के सर्वेक्षकों को अपनी चिड़िया मारने की बन्दूकों का निशाना बनाया करते थे। इन सर्वेक्षकों के लिए सबसे अधिक शान्ति का समय रविवारों के प्रातःकाल का होता था, जबकि हर कोई गिरजाघर में उन पादरियों का भाषण सुन रहा होता था, जो रेल के विरुद्ध प्रचार किया करते थे। एक बार स्टीफिंसन ने भूमि के कुछ हिस्सों का सर्वेक्षण चांदनी रात में करने की कोशिश की। परन्तु उस रात में भी उसके विरोधी बहुत बड़ी संख्या में आ पहुंचे और उन्होंने उसे भगा दिया। तब उसने एक तरकीब सोच निकाली। वह नहर के किसी एक ऐसे इलाके में, जिसका कि सर्वेक्षण पहले ही हो चुका होता था, कुछ

गोलियां छुड़वाता और जब किसानों की सेना उस दिशा में उन लोगों की खोज करने जाती, तब उसके सर्वेक्षक किसी अन्य स्थान का सर्वेक्षण कर डालते।

अब अन्त में स्टीफिंसन के समर्थकों का पार्लियामेंट में बहुमत हो गया था और रेलवे विधेयक हाउस औफ कौमन्स और हाउस औफ लौर्ड्स, दोनों में पारित हो गया। रेल लाइन बनाने का काम तुरन्त शुरू हो गया। स्टीफिंसन ने अपने पुत्र रौबर्ट को रेल लाइन के, विशेष रूप से चैटमौस में से, जो सबसे विकट इलाका था, निर्माण-कार्य में सहायता करने के लिए अमेरिका से बुलवा लिया। वहां वह पुलों का निर्माण करवा रहा था। इस युवक इंजीनियर ने सब समस्याओं को बढ़िया ढंग से हल कर डाला।

अंग्रेजों की निष्पक्षता की यह मांग थी कि इस नई रेल लाइन के लिए इंजिन बनाने का ठेका एक खुली प्रतियोगिता करके दिया जाना चाहिए। स्टीफिंसन ने स्वयं इस बात पर जोर दिया कि अन्य इंजीनियरों के इंजिनों को भी उसके इंजिन से मुकाबला करने का अवसर दिया जाना चाहिए।

नई बनकर तैयार हुई रेल लाइन पर सन् १८२९ के अक्टूबर मास में 'रेनहिल' नामक स्थान पर इंजिनों की प्रसिद्ध दौड़ हुई। इस महान घटना को देखने के लिए हजारों दर्शक आये। इस दौड़ में भाग लेने वाले पांच इंजिन थे। एक स्टीफिंसन का अपना, जिसका नाम उसने 'राकेट' रखा था और चार अन्य इंजीनियरों द्वारा बनाये गये इंजिन। परन्तु एक इंजिन को इस प्रतियोगिता से शीघ्र ही हट जाना पड़ा, क्योंकि यह पता

चल गया कि उस इंजिन के अन्दर एक घोड़ा छिपा कर रखा गया था, जो उसे खींचता था।

इस दौड़ को 'राकेट' ने बड़ी सरलता से जीत लिया और उसकी चाल ३५ मील प्रति घंटे तक जा पहुंची, जो बिल्कुल 'अविश्वसनीय' थी। इस आश्चर्यजनक इंजिन से १५ सितम्बर १८३० को मैनचेस्टर-लिवरपूल रेल लाइन का उद्घाटन किया गया।

शीघ्र ही लोहे की पटरियां सभी देशों में बिछाई जाने लगीं जिसके फलस्वरूप वस्तुओं का और यात्रियों का आवागमन इतनी जल्दी और इतनी अधिक मात्रा में होने लगा कि जिसकी किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। स्टीफिंसन ने मूढ़ता और पिछड़ेपन पर महान विजय प्राप्त की थी। उसकी भाप की शक्ति की विजय उसकी व्यक्तिगत विजय थी। लिवरपूल-मैनचेस्टर रेल लाइन के चालू होने के बाद १५ वर्ष तक वह अनेक देशों के लिए इंजिन बनाता रहा और उसके बाद १८४५ में वह काम-धाम से निवृत्त होकर फिर चैस्टरफील्ड में अपने घर लौट गया। उसे सबसे अधिक आनन्द तब होता था, जब उसे कुश्ती करने के लिए अपना कोई प्रतिद्वन्द्वी मिल जाता था, क्योंकि किसी समय कोयला झोंकने वाला यह व्यक्ति अपने बुढ़ापे में भी पूरा भीम था। १८४८ में ६७ वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हुई।

## परमाणु ऊर्जा और भापचालित टर्बाइन

पापीन से भी पहले एक इटालियन आविष्कारक ब्रांचा ने एक छोटा-सा यन्त्र बनाया था, जिसमें भाप की फुहार की शक्ति

को एक चक्केदार पहिये को घुमाने के काम में लाया गया था— यह पहली टर्बाइन थी। 'टर्बाइन' शब्द इटली की भाषा के के 'टर्बाइनो' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है 'घूमरघेरी'। सिद्धान्त की दृष्टि से टर्बाइन भाप की शक्ति का उपयोग करने के लिए पापीन द्वारा आविष्कृत और वाट द्वारा पूरे बनाये गये पेचीदा पिस्टन वाले इंजिन की अपेक्षा कहीं अधिक सरल प्रणाली है। बहुत समय तक इंजीनियरों ने एक कार्यक्षम भाप-चालित टर्बाइन बनाने का यत्न किया, किन्तु वे सब असफल रहे। परन्तु अन्त में सन् १८८४ में एक अंग्रेज इंजीनियर सर चार्ल्स ऐलगरनौन पार्सन्स ने एक इस प्रकार का यन्त्र बनाया। इसमें एक ही लोहे के डंडे पर अनेक पहिये लगाये गये थे और इन पहियों में लोहे के सैकड़ों पंख लगे हुए थे। जब ये पहिये घूमते थे, तो वह डंडा घूमने लगता था, जिस पर वे लगे हुए थे। ये पहिये अपने पंखों समेत एक धातु के गोले में बन्द रहते थे।

भापचालित टर्बाइन का परिवहन और उद्योग में अनेक रूपों में महत्वपूर्ण उपयोग हुआ है। यह हमारे लिए बिजली पैदा करती है और अनेक जहाजों और रेलों के इंजिनों को चलाती है। फिर भी इसका सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपयोग अभी होना बाकी है : कारण यह है कि इस विषय में अब कोई सन्देह नहीं है कि जिस साधन के द्वारा हम परमाणु ऊर्जा का लाभ उठा पायेंगे, वह भापचालित टर्बाइन ही होगी; और तब ब्रांचा के इस छोटे-से यन्त्र का एक ऐसा उपयोग होने लगेगा, जिसका कि उसके कल्पना-प्रवण मस्तिष्क ने भी कभी सपना तक न

लिया होगा ।

परमाणु ऊर्जा—परमाणु के नाभिक अथवा गिरी को फाड़ने से मुक्त हुई अत्यन्त प्रबल शक्तियों का उपयोग—एक प्रकार की 'भट्ठियों' द्वारा उत्पन्न की जाती है। इन भट्ठियों को अभिक्रियक (रिऐक्टर) कहते हैं (देखिये अध्याय ८)। जब नाभिक फटते हैं, तब ऊष्मा उत्पन्न होती है और इस ऊष्मा का उपयोग पानी को भाप बनाने के लिए किया जाता है। भाप का सबसे अच्छा उपयोग टर्बाइन में होता है और टर्बाइन को बिजली उत्पन्न करने के यन्त्र को चलाने के काम में लाया जा सकता है।

इस प्रकार परमाणु युग के आगमन का, जिसके आरम्भ में हम खड़े हैं, यह अर्थ होगा कि हमारे पुराने मित्र अर्थात् भाप की शक्ति को फिर से काम में लाया जाने लगे, क्योंकि ऊष्मा को ऊर्जा में बदलने का अब भी यही सबसे अधिक सुविधाजनक उपाय है।

अध्याय ३

# बिजली का वशीकरण

अपना कंघा लो और उसे कपड़े पर रगड़ो। अब उसे ि कागज़ के ज़रा से टुकड़े के पास ले जाओ। कंघा कागज़ को प्रकार अपनी ओर खींचेगा, जैसे चुम्बक लोहे की कील खींचता है। वह कौन-सी शक्ति है, जो इन दो पदार्थों के में काम कर रही है?

यह वही शक्ति है, जो हमारे बल्बों में प्रकाश उत्पन्न व है, जो भूगर्भीय रेलगाड़ियों को चलाती है और हमारे रे के ध्वनिवर्धकों (लाउड-स्पीकरों) में ध्वनि उत्पन्न करती

तुम्हारा कंघा जिस वस्तु से बना है, वह एक नई अ गिक उपज है, जिसे प्लास्टिक कहा जाता है। परन्तु मिलती-जुलती अन्य अनेक वस्तुएं हैं, जो प्रकृति में पाई हैं। इनमें सबसे अधिक जानी-पहचानी वस्तु अम्बर है। से लगभग ६०० साल पहले एक यूनानी दार्शनिक, मिले के थेलीज़, ने यह बात खोज निकाली थी कि यदि अम्ब किसी कपड़े से रगड़ा जाये, तो वह छोटी-छोटी वस्तुओ अपनी ओर खींचने लगता है। अम्बर को यूनानी भा 'इलैक्ट्रोन' कहते हैं और इसीलिए थेलीज़ ने इस रहस्यपूर्ण

का नाम 'इलैक्ट्रिक' रखा।

प्राचीन काल में यूनान में स्त्रियों ने इस खोज का उपयोग यह किया कि वे अपने चर्खों में सजावट के लिए अम्बर के टुकड़े लगा लेती थीं। जब ऊन का तागा अम्बर से रगड़ खाता था, तो पहले तो वह अम्बर की ओर खिचता था और उसके बाद वह उससे दूर हटने लगता था। कताई का काम बहुत ही उबाने वाला काम था। इस ज़रा से रोचक दृश्य के कारण वह कुछ हल्का लगने लगता था। यह भी ठीक है कि केवल धनी स्त्रियां ही अम्बर खरीद सकती थीं, क्योंकि यह एक अमूल्य पत्थर था, जिसे कि बाल्टिक समुद्र के तट से लाना पड़ता था, जो वहां से काफी दूर था।

इस प्रकार २००० से भी अधिक वर्ष बीत गये और तब कहीं वैज्ञानिकों ने इस रहस्यमय शक्ति की खोजबीन शुरू की। सर विलियम गिलबर्ट, जो रानी एलिजाबेथ का चिकित्सक था, पहला भौतिकी शास्त्री था, जिसने इसका अध्ययन किया और उसी ने अंग्रेजी का शब्द 'इलैक्ट्रिसिटी' गढ़ा, जिसे हम विद्युत् कहते हैं। उसने यह बात खोज निकाली कि अम्बर की आकर्षण शक्ति का स्रोत वही है, जो मनुष्य के बालों में कंघा करते समय उत्पन्न होने वाली चटचट की ध्वनि और छोटी-छोटी चिनगारियों का है। इसलिए बिजली उत्पन्न करने का उपाय घर्षण (रगड़) ही होना चाहिए।

उसने एक 'विद्युत् यन्त्र' बनाया। इसमें एक बड़ा गोलाकार टुकड़ा था, जो दोनों ओर लगे हुए बुरुशों के बीच में घूमता था। इसके कारण दो किनारों पर लगे धातु के गोल

टुकड़ों के बीच में चिनगारियां उत्पन्न होने लगती थीं। यह सत्रहवीं शताब्दी के भद्र समाज का एक लोकप्रिय खिलौना था। इस प्रकार डेढ़ शताब्दी और बीत गई और उसके बाद कहीं जाकर विद्युत् की खोज के सम्बन्ध में एक निश्चायक कदम आगे बढ़ाया गया। सन् १७४६ में हालैंड के वैज्ञानिक कुनेइयस ने, जो लीडन का रहने वाला था, अपना प्रसिद्ध मर्तबान बनाया: यह पानी से भरा हुआ एक शीशे का पात्र था, जिसके ऊपर एक धातु की बनी हुई घुंडी लगी थी। उसने इस पात्र का सम्बन्ध गिलबर्ट के 'विद्युत् यन्त्र' से जोड़ दिया। यन्त्र को कई बार तेज़ी से चलाने के बाद उसने उसे रोक दिया और उसे मर्तबान से अलग कर दिया। फिर भी जब उसने मर्तबान के ऊपर की घुंडी को छुआ, तो उसे इतने ज़ोर का झटका लगा कि वह नीचे गिर पड़ा। वह समझ गया कि उसने विद्युत् को इकट्ठा करके रखने का उपाय ढूंढ लिया है।

### पतंग और ताली

विद्युत् के सम्बन्ध में अध्ययन करने वाला अगला वैज्ञानिक बैंजामिन फ्रैंकलिन था। उसका जन्म सन् १७०६ में अमेरिका के मैसाचुसैट्स राज्य में बोस्टन में हुआ था। वह अपने पिता की, जो इंग्लैंड से आकर अमेरिका में रहने लगा था और साबुन का काम करता था, पन्द्रहवीं सन्तान था।

तीस-पैंतीस वर्ष की आयु तक तो वह प्राकृतिक तत्वों का अध्ययन प्रारम्भ ही नहीं कर पाया था और तब वह चालीस वर्ष का था, जब वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि बादलों में होने

वाली गरज उस वस्तु की एक विशाल प्रतिमूर्ति भर है, जो कि तब हुई थी जबकि कुनेइयस ने अपने लीडन मर्तबान को छुआ था—अर्थात् विभिन्न विद्युत् विभव (शक्ति) वाले दो पदार्थों जैसे बादल और पृथ्वी, के बीच विद्युत् का विसर्जन (डिस्चार्ज)। उसने देखा कि विसर्जित होती हुई चिनगारी, बिजली, ऊंची इमारतों और पेड़ों पर गिरती है। इससे उसे यह विचार सूझा कि इस शक्ति को जान-बूझ कर पृथ्वी की ओर ऐसे ढंग से



विद्युत् : बैंजामिन फ्रैंकलिन का पतंग और ताली से परीक्षण (१७५२)

आकर्षित किया जाये कि उसके विसर्जन से कोई हानि न हो।

सन् १७५२ की ग्रीष्म ऋतु में उसने अपना प्रसिद्ध परीक्षण किया। उसने एक रेशमी पतंग में लोहे की एक नुकीली कील बांध दी और पतंग की डोर के अन्तिम सिरे पर एक लोहे की ताली बांधकर उस ताली को पकड़ लिया। यह परीक्षण जितना फ्रैंकलिन समझता था, उससे कहीं अधिक खतरनाक था और इसमें वहुत सरलता से उसकी मृत्यु हो सकती थी। अपने पुत्र को साथ लेकर वह फिलाडल्फिया के निकट एक मैदान में गया और जब एक बरसाती तूफान आने वाला था, तब उसने अपनी पतंग उड़ाई। वह विद्युत् के विसर्जन के सम्बन्ध में अपने सिद्धान्त को प्रमाणित करना चाहता था और उसने देखा कि उसका अनुमान ठीक था। ताली से निकलकर एक चिनगारी उसकी कलाई में आ पहुंची। यदि उसकी पतंग पर बिजली गिरी होती, तो उसे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता।

उसका अगला परीक्षण यह था कि उसने अपने मकान की बाहर की दीवार के साथ एक लोहे की छड़ लगा दी। इस छड़ के द्वारा उसने वायुमंडल की बिजली को एक लीडन मर्तबान में भर दिखाया।

उसका अनुसन्धान कार्य अभी यहीं तक पहुंचा था कि उसे उत्तरी अमेरिका में सब अंग्रेजी उपनिवेशों का महा डाकपाल नियुक्त कर दिया गया और कई वर्ष तक उसे और आगे परीक्षण करने के लिए समय न मिला। १७६० में जाकर वह कहीं पहला व्यावहारिक विद्युत् संवाहक बना सका, जो उसने फिलाडल्फिया के एक व्यापारी के मकान पर लगाया। यह मनो-

रंजक बात है कि फ्रैंकलिन का यह विश्वास था कि विद्युत् संवाहक के ऊपरी सिरे पर बनी धातु की नोक में से होकर बिजली पृथ्वी से निरन्तर विकीर्ण होती रहेगी और इस प्रकार वायु में और पृथ्वी पर विद्यमान सम्भावित बिजलियों का समानीकरण होता रहेगा, जिससे बिजली के प्रबल विसर्जन का आघात न होने पायेगा। परन्तु इस विषय में आधुनिक सिद्धान्त यह है कि विद्युत् संवाहक वस्तुतः बादलों की बिजली को अपनी ओर आकर्षित करता है और अपने आसपास की वायु को विद्युत् संवाहक बना देता है और इस प्रकार सम्भावित विद्युतों के समानीकरण के वास्ते बादल के विद्युतीय आवेश के लिए रास्ता बना देता है। परन्तु फ्रैंकलिन का सिद्धान्त चाहे जो रहा हो, किन्तु उसका विद्युत् संवाहक मानव जाति के लिए एक महान वरदान सिद्ध हुआ है।

उसके वैज्ञानिक कार्य में राजनीति के कारण फिर बाधा पड़ी। उपनिवेशों की स्वाधीनता के लिए महान संघर्ष शुरू हो चुका था और उसे अमेरिका में बसे हुए लोगों की ओर से अंग्रेजी सरकार द्वारा थोपे गये करों के बोझ के विरोध में प्रतिवाद करने के लिए लन्दन भेजा गया। सन् १७७६ में उसने जौर्ज वाशिंगटन तथा अन्य अमेरिकन नेताओं की स्वाधीनता का घोषणापत्र तैयार करने में सहायता की और अन्त में उसे संयुक्त-राज्य अमेरिका के प्रथम राजदूत के रूप में फ्रांस भेजा गया। इस बीच में फिलाडल्फिया में—जो संयुक्त राज्य अमेरिका की पहली राजधानी थी—प्रत्येक सार्वजनिक इमारत पर फ्रैंकलिन के विद्युत् संवाहक लगाये जा चुके थे। केवल एक इमारत इसका

अपवाद थी : फ्रांसीसी राजदूतावास। और सन् १७८२ में उसी इमारत पर बिजली गिरी और उसमें एक कर्मचारी मारा गया। इससे पता चल गया कि फ्रैंकलिन का आविष्कार कितना अधिक महत्वपूर्ण था।

बैंजामिन फ्रैंकलिन की मृत्यु ८४ वर्ष की आयु में हुई। वह अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक विद्युत् के सम्बन्ध में परीक्षण करता रहा।

## मेंढक की टांग का रहस्य

सन् १७९० की बात है। एक दिन सायंकाल के समय बोलोना में अपने मकान पर चिकित्सा विज्ञान का प्राध्यापक अलोइशियो गालवानी अपने छात्रों के सम्मुख भाषण दे रहा था। गालवानी और उसके श्रोता मकान के बड़े कमरे में थे और उसकी पत्नी साथ लगे रसोईघर में भोजन तैयार कर रही थी। वह मेंढकों की खाल एक चाकू से उतार रही थी। उसके पति का यह प्रिय भोजन था।

उसका ध्यान प्राध्यापक गालवानी के भाषण की ओर था। एकाएक चाकू उसके हाथ से छूट कर तश्तरी में पड़े हुए मेंढक की टांग पर इस प्रकार जा गिरा कि उसका एक भाग रांगे की तश्तरी को छू रहा था और दूसरा भाग मेंढक की टांग को। एकाएक खाल उतरी हुई मेंढक की टांग ने इतनी ज़ोर से झटका खाया कि जैसे वह मेंढक तश्तरी में से कूद जाना चाहता हो।

श्रीमती गालवानी के मुंह से चीख निकल गई। उसकी पहली इच्छा यह हुई कि वह मेंढक को चाकू से मार दे, क्योंकि

उसे लगा कि वह मेंढक अब भी जिन्दा है। परन्तु तुरन्त ही मेंढक की वह टांग ढीली पड़ गई और उसके बाद फिर नहीं हिली।

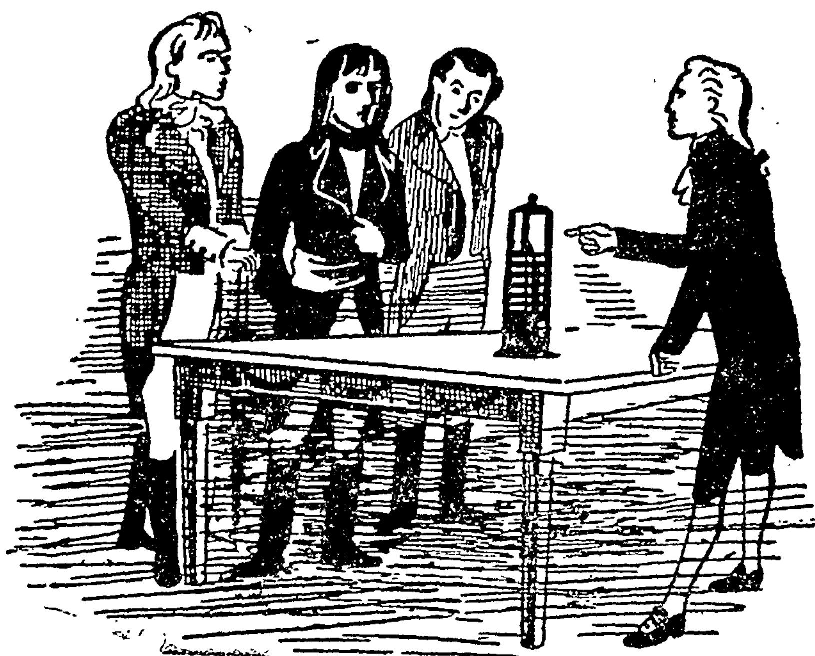
प्राध्यापक गालवानी ने क्रोध से पूछा: "यह शोर कैसा है?"

श्रीमती गालवानी ने जो कुछ हुआ था, उसे बता दिया और मेंढक की टांग को चाकू से उसी प्रकार फिर छूकर दिखाया, जैसे कि गिरते समय चाकू टांग से छुआ था और टांग ने फिर उसी प्रकार झटका खाया।

गालवानी यह नहीं चाहता था कि उसके विद्यार्थियों को यह पता चले कि उसके सामने कोई ऐसा प्राकृतिक प्रपंच आ उपस्थित हुआ है कि जिसकी व्याख्या वह नहीं कर सकता। इसलिए उसने तुरन्त कहा: "श्रीमती जी, मैंने एक महान आविष्कार कर डाला है—यह प्राणिविद्युत् है, जो जीवन का मूल स्रोत है।"

उसका यह विश्वास था कि मेंढक की टांग की मांसपेशियां छोटे-छोटे लीडन मर्तबानों के समान हैं। इसका फल यह हुआ कि उसने कई जटिल और ऊटपटांग परीक्षण मेंढकों पर किये। परन्तु उसका कोई परिणाम न निकला, क्योंकि उसे यही बात स्पष्ट न थी कि वह वस्तुतः किस चीज़ की खोज कर रहा है। प्राणियों पर इस प्रकार परीक्षण करना उन दिनों अच्छा खासा फैशन बन गया और कुछ समय तक तो बेचारी मेंढक जाति के लिए, जो उस कुसंयोग से विद्युत् सम्बन्धी अनुसंधान में आ फंसी थी, बिल्कुल विनष्ट हो जाने का ही संकट उपस्थित हो गया था।

वस्तुतः उस मेंढक की टांग के झटका खाने का कारण क्या था ? अपनी मृत्यु के समय तक प्रोफेसर गालवानी अपने 'प्राणिविद्युत्' के सिद्धान्त पर डटा रहा। इस रहस्य का समाधान उससे भी बड़े एक महान व्यक्ति ने किया, जिसका नाम अलैसान्द्रो वोल्ता था। वह भी इटली का ही एक वैज्ञानिक था। वोल्ता पाविया में भौतिकी विज्ञान का प्राध्यापक था। उसने यह बतलाया कि मरे हुए मेंढकों में प्राणिविद्युत् या जीवन



वोल्ता नैपोलियन को अपनी विद्युत् की वैटरी के विषय में समझा रहा है

का मूल स्रोत जैसी कोई वस्तु नहीं रहती। उसने विद्युत् के क्षेत्र में उन्हें उनका वास्तविक और अपेक्षाकृत बहुत साधारण

स्थान प्रदान किया। उसने यह समझ लिया कि श्रीमती गालवानी के रसोईघर में जो विचित्र दृश्य उपस्थित हुआ था, उसमें महत्व-पूर्ण तत्व दो विभिन्न धातुएं थीं——चाकू का इस्पात और तश्तरी का रांगा। वोल्ता ने यह प्रदर्शित कर दिखाया कि जब भी दो विभिन्न धातुओं के बीच सीलन आ जाती है, तब वहां विद्युत् का विभंव उत्पन्न हो जाता है। मेंढकों की टांगें, जो नमकीन पानी में भीगी हुई थीं, इन दो धातुओं के बीच में केवल सीलन के संवाहकों का कार्य कर रही थीं और उन टांगों की मांसपेशियां उनके अन्दर से गुजरने वाली विद्युत् की धारा के आघात के कारण झटका खाती थीं।

इस खोज को कर लेने के बाद इसे व्यावहारिक उपयोग में लाना वोल्ता के लिए मामूली-सा काम रह गया। उसने धारा विद्युत् के सर्वप्रथम साधन का आविष्कार किया। वह था—'वोल्तीय पुंज', विद्युत् की बैटरी। इसमें तांबे और जस्त की पतली-पतली पतरियां एक दूसरे के ऊपर इस प्रकार रखी रहती थीं कि उनमें से हर दो पतरियों के बीच में तेजाब में भिगोये हुए कागज की एक तह रहती थी। अनेक महापुरुषों की भांति वोल्ता विनम्र व्यक्ति था और उसने आग्रहपूर्वक अपने आविष्कार को 'गालवानीय तत्व' का नाम दिया और जिस प्रपंच की उसने सही-सही व्याख्या कर दी थी, उसे 'गालवानीय धारा' नाम दिया। उसने यह सब उस व्यक्ति के सम्मान में किया, जो अपने लिए स्वयं कीर्ति अर्जित नहीं कर पाया था।

इस बैटरी का आविष्कार हो जाने पर, इस नये प्रकार की धारा विद्युत् का आविष्कार हो जाने पर जो केवल चिनगारी

उत्पन्न करने या धक्का देकर समाप्त नहीं हो जाती थी, अपितु जल की धारा की भांति निरन्तर बहती रहती थी, विद्युत् एक स्थायी वस्तु बन गई और विद्युतीय इंजीनियरिंग ने अपनी विश्व-विजय का श्रीगणेश किया। सन् १८०० से यूरोप और अमेरिका की अनगिनत प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिकों ने यह देखने के लिए विद्युत् पर परीक्षण किये कि यह किन-किन उपयोगी कामों को कर सकती है। उन्होंने देखा कि विद्युत् तार में होकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा सकती है; यह ऊष्मा, और शायद प्रकाश भी उत्पन्न कर सकती है; उनका विश्वास था कि किसी दिन इससे भाप के इंजिन की तरह भारी-भारी काम भी करवाये जा सकते हैं।

**डाक्टर जैक्सन का जादू**

सन् १८२० में एक दिन एक डेनमार्क का निवासी भौतिकी वैज्ञानिक डाक्टर हान्स औस्टैंड कोपनहेगन विश्वविद्यालय में भाषण दे रहा था। उसके हाथ में एक बिजली की तार थी। वह एकाएक उसके हाथ से छूट कर नीचे गिर पड़ी। जब वह उसे उठाने लगा तो उसका ध्यान इस बात पर गया कि वह तार मेज पर रखे हुए एक दिक्सूचक यन्त्र के ऊपर गिरी थी और उस समय दिक्सूचक यन्त्र की सूई उत्तर की ओर संकेत करने की बजाय बिल्कुल अलग दिशा में घूमी हुई थी।

औस्टैंड चक्कर में पड़ गया। उसने तार को उठा लिया और इसके साथ ही सूई अपनी उचित स्थिति में आ गई अर्थात् उत्तर की ओर संकेत करने लगी।

उसे यह समझने में देर नहीं लगी कि विद्युत् और चुम्बकत्व के बीच बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है और उसने अपनी इस खोज के विषय में एक लम्बा विवरण लिख डाला। फ्रांसीसी वैज्ञानिक ऐम्पियर ने इस विवरण को ध्यान से पढ़ा और ओर्स्टैड के परीक्षणों को अपने यहां दुहरा कर देखा। उसने यह पता चलाया कि विद्युत् सचमुच ही चुम्बकत्व को उत्पन्न कर सकती है। उसने बताया कि यदि किसी चुम्बक की सूई को तार की एक कुंडली में रख दिया जाये, तो उससे सूई पर कहीं अधिक जोरदार चुम्बकीय प्रभाव डाला जा सकता है।

अंग्रेज भौतिकी वैज्ञानिक स्टर्जियन और एक कदम आगे गया। उसने पता चलाया कि यदि किसी कच्चे लोहे के टुकड़े को विसंवाहित तार की कुंडली के बीच में रख दिया जाये और उस कुंडली में से विद्युत् की धारा गुजारी जाये, तो वह चुम्बक बन जाता है। परन्तु वह लोहा केवल अस्थायी चुम्बक बनता है। ज्योंही बिजली की धारा गुजरनी शुरू होती है, त्योंही वह चुम्बक बन जाता है और केवल तब तक चुम्बक रहता है, जब तक कि धारा गुजरती रहती है। ज्योंही बिजली की धारा बन्द कर दी जाती है, त्योंही लोहा फिर पहले जैसा अचुम्बकीय बन जाता है।

स्टर्जियन ने सर्वप्रथम विद्युतीय चुम्बक बनाया। इससे वैज्ञानिकों में तहलका मच गया, और ऐम्पियर पहला वैज्ञानिक था, जिसने सोर्बोन और अकादेमी फ्रांसेज़ में अपने भाषणों में इस उपकरण को भी सम्मिलित किया।

एक युवक अमेरिकन डाक्टर चार्ल्स टी०जैक्सन, जो बोस्टन

का निवासी था, सैर के लिए पारी (पेरिस) आया हुआ था और वहां उसने ऐम्पियर का एक भाषण सुना। उसे विद्युतीय चुम्बक बहुत पसन्द आया और वापस अमेरिका लौटने से पहले उसने इसके लिए आवश्यक उपकरण खरीद लिये। अक्टूबर १६३२ में वह ल हावरे बन्दरगाह में 'सली' नामक जहाज पर सवार हुआ। एक दिन सायंकाल उसने अपने विद्युतीय चुम्बक का प्रदर्शन अपने साथी यात्रियों के सामने किया। उसने कच्चे लोहे का एक टुकड़ा लिया। उसके चारों ओर एक विसंवाहित तार की कुंडली लपेटी और उस कुंडली को एक गालवानीय बैटरी के साथ जोड़ दिया। उस लोहे के टुकड़े ने साधारण चुम्बकों की भांति मेज़ पर पड़ी हुई कुछ कीलों को अपनी ओर खींच लिया; परन्तु जब डाक्टर जैक्सन ने तार का सम्बन्ध बैटरी से हटा दिया, तो कीलें फिर मेज़ पर गिर पड़ीं।

यात्री लोग खूब हँसे और उन्होंने वाहवाही भी की। यह भी क्या मज़ेदार वैज्ञानिक खिलौना था! परन्तु उनमें से एक की दृष्टि में यह खिलौने से बढ़कर कुछ चीज थी। उसके मन में एक ऐसा विचार कौंध गया, जिसके कारण दैनिक जीवन में इतना परिवर्तन हो जाना था कि जिसकी पहले से कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। उस व्यक्ति का नाम सैमुअल मोर्स था; और यदि कोई व्यक्ति उसे केवल एक घंटा पहले यह बतलाता कि वह एक महान आविष्कारक बनने वाला है, तो उसे इस बात पर कभी विश्वास न होता। कारण यह है कि वह एक कलाकार, चित्रकार था और इस क्षेत्र में काफी विख्यात था। उसकी आयु ४० वर्ष थी। साधारणतया इस आयु पर पहुंचकर

लोग अपना पेशा नहीं बदलते। उसका जन्म एक मामूली परिवार में हुआ था और उसनें एक सुन्दर लड़की से विवाह किया था।

सात वर्ष तक उन्होंने सुखपूर्वक विवाहित जीवन व्यतीत किया, किन्तु उसके बाद उसकी पत्नी का देहान्त हो गया और वह इतना दुखी हुआ कि उसे लगा कि वह अपना काम जारी नहीं रख सकता। उसने यूरोप के कला-केन्द्रों और संग्रहालयों की एक लम्बी यात्रा करके एकान्त पाने का यत्न किया था। अब वह फिर अपना काम शुरू करने के लिए वापस अमेरिका लौट रहा था। परन्तु डाक्टर जैक्सन ने विद्युतीय चुम्बक का जो प्रदर्शन किया था, उससे उसके सारे जीवन की दिशा ही बदल जानी थी।

जब वह उस परीक्षण को देख रहा था, तब उसके मन में कौनसा विचार स्फुरित हुआ था ?

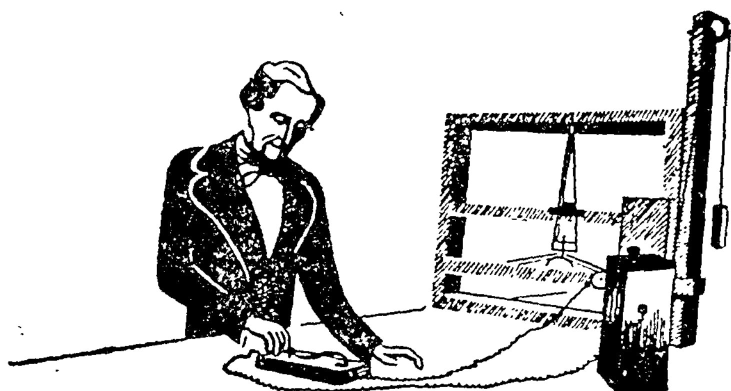
उसने सोचा : क्योंकि विद्युत् के परिपथ को किसी एक छोर पर खोला और वन्द किया जा सकता है, इसलिए कोई कारण नहीं कि विद्युत् परिपथ के दूसरे छोर पर विद्युतीय चुम्बक के उपयोग द्वारा सन्देशों को क्यों न लिखा जा सके।

यह एक बिल्कुल सरल सी सूझ थी, परन्तु मोर्स ने इस बात को अनुभव नहीं किया था कि उस जैसे व्यक्ति के लिए, जिसने कि कोई तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया था और जिसे अपना आविष्कार संसार को 'बेचने' का कोई अनुभव नहीं था, इस आविष्कार को व्यावहारिक प्रयोग में लाना कितना कठिन होगा। उसे केवल यह मालूम था कि एक नगर से दूसरे नगर

तक और एक देश से दूसरे देश तक सम्वाद भेजने के किसी आधुनिक उपकरण की मांग काफी अधिक होनी चाहिए। जिस गति से समाचार एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजे जाते थे, वह पिछले दो हज़ार वर्षों से लगभग एक सी ही चली आ रही थी।

## मोर्स के कूटलेख का जन्म

अपनी उस सारी समुद्र यात्रा में मोर्स अपनी कोठरी में ही रहा। वह अपनी रेखा-चित्र बनाने की कापी में विद्युत् के उस तार (दूरलेखन) यंत्र के आरेखन बनाता रहा, जिसे वह बनाना चाहता था। वह इस विचार में पूरी तरह लीन हो गया था और अन्त में जब वह वापस न्यूयार्क पहुंचा तो उसे कलापूर्ण चित्र बनाने का कोई उत्साह शेष न रहा था। उसने यह यत्न किया कि जीविका उपार्जन के लिए कुछ लोगों को आलेख्य



मोर्स और एक चित्रफलक पर बनाया गया उसका तार (दूरलेखन) यन्त्र का नमूना

सिखाने का काम किया जाये और शेष समय अपने आविष्कार पर लगाया जाये। यदि उसका कोई शिष्य अपनी फीस लाने में चूक जाता था, तो बेचारे मोर्स को अपनी जीवन-यात्रा चालू रखने के लिए चाय और बिस्कुटों के अलावा और कुछ कम ही प्राप्त हो पाता था।

उसने अपने पहले नमूने के आधार के लिए एक पुराने चित्र-फलक का प्रयोग किया। उसका बाकी अपरिष्कृत उपकरण था—एक विद्युतीय चुम्बक, जिसे उसने तार से लपेट कर स्वयं तैयार किया था, एक सैल वाली एक बैटरी और एक बेकार हो गई दीवार-घड़ी की मशीन। जब वह तार का सम्बन्ध बैटरी से जोड़ कर विद्युत् के परिपथ को पूरा कर देता था, तब चित्र-फलक पर लगा हुआ विद्युतीय चुम्बक एक लोहे के टुकड़े को अपनी ओर खींचता था, जो कि आर्मेचर का काम देता था। इस लोहे के टुकड़े के साथ उसने एक पैन्सिल बांध दी थी। इस पैन्सिल के नीचे से होकर एक कागज़ की पतरी घड़ी की मशीन की सहायता से धीरे-धीरे आगे बढ़ती रहती थी और पैन्सिल उस पतरी पर तिरछे निशान बनाती जाती थी। विद्युत् के परिपथ को कम या अधिक समय बाद खोलने और बन्द करने के द्वारा वह अनेक प्रकार के चिह्न बना सकता था, जिनमें से प्रत्येक चिह्न वर्णमाला के किसी एक विशिष्ट अक्षर का द्योतक होता था।

यह यन्त्र ठीक काम करता था, परन्तु इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता था और यह इस प्रकार के संकेत बहुत थोड़ी दूर तक ही भेज पाता था। ज्योंही वह अपनी तार को १२ या

१५ गज से अधिक दूर तक ले जाता, त्योंही विद्युत् की धारा इतनी क्षीण पड़ जाती कि उससे विद्युतीय चुम्बक काम ही न करता। वह इस सोच में पड़ा कि वह और अधिक दूरी तक किस प्रकार अपने सन्देशों को भेज सकता है; और सोचते-सोचते उसे एक बढ़िया विचार सूझा। वह था योजन (पुनः प्रचालन), जो इस समय भी सबसे महत्वपूर्ण विद्युतीय उपकरणों में से एक है। 'पुनः प्रचालन' शब्द का उपयोग पहले उन डाक के केन्द्रों के लिए किया जाता था, जहां पर डाक-गाड़ियों के थके हुए घोड़ों को बदलकर नये घोड़े लगाये जाते थे। मोर्स ने इसी पद्धति का उपयोग अपने तारयन्त्र के लिए किया। जब क्षीण धारा तार के अन्तिम सिरे तक पहुंचती थी, तब उसे एक छोटे से विद्युतीय चुम्बक के एक ज़रा से आर्मेचर को हिलाना होता था और तब एक ताजी बैटरी के साथ एक नया विद्युतीय परिपथ पूरा हो जाता था। इस प्रकार तार के संकेतों को कितनी भी दूर तक ले जाने के लिए एक के बाद एक कितने ही विद्युतीय परिपथों को परस्पर जोड़ा जा सकता था।

इस बीच में कुछ मित्रों की सहायता से मोर्स को न्यूयार्क सिटी विश्वविद्यालय में चित्रकला के अध्यापन का काम मिल गया। अब कम से कम उसके पास खाने के लिए पैसे की तंगी नहीं रही। उसने अपना पुनः प्रचालन यन्त्र अपने कुछ विद्यार्थियों को दिखाया। उनमें से एक छात्र अलफ्रैड वेल इस सम्बन्ध में इतना उत्साही निकला कि उसने न केवल मौर्स को उसके तार (दूरलेखन) यन्त्र का काम करने योग्य नमूना बनाने में सहायता देने का वचन दिया, अपितु उसने अपने पिता को, जो

न्यूजर्सी में एक लोहे के कारखाने का मालिक था, इस ग्राविष्कार में पैसा लगाने के लिए भी तैयार कर लिया।

ग्रब रास्ता काफी साफ दिखाई पड़ता था। बैल ने पहला काम यह किया कि विद्युत् परिपथ को बन्द करने ग्रौर खोलने के लिए एक व्यवहारयोग्य 'कुंजी' का ग्रभिकल्प (नक्शा) तैयार किया—यह 'मोर्स कुंजी' कहलाई, जो सारत: ग्राज तक भी वैसी ही चली ग्रा रही है। बैल के पिता के धन से तार (दूर-लेखन) यन्त्र का एक नया कार्यक्षम नमूना तैयार किया गया ग्रौर उसका पहली बार प्रदर्शन १८३७ के सितम्बर मास में विश्वविद्यालय के भवन में किया गया। परन्तु मोर्स द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले संकेत, जो तिरछी रेखाग्रों के रूप में थे, बहुत वेढंगे सिद्ध हुए। इसलिए एक दिन मोर्स एक ग्रखबार लेकर वैल के साथ वैठ गया ग्रौर वे दोनों यह गिनने लगे कि वर्णमाला के कौनसे ग्रक्षर उसमें कितनी-कितनी बार प्रयुक्त हुए हैं। ग्रंग्रेजी वर्णमाला का ग्रक्षर 'ई' सवसे ग्रधिक बार प्रयुक्त हुग्रा था। मोर्स जो ग्रब एक नई कूटलेख प्रणाली बनाने लगा था, उसमें उसने इस ग्रक्षर के लिए एक बिन्दु का चिह्न नियत किया। उसके वाद दूसरे नम्बर पर सवसे ग्रधिक बार 'टी' ग्रक्षर प्रयुक्त हुग्रा था। इसके लिए उसने अपेक्षाकृत एक लम्बा संकेत, एक छोटी सी रेखा, नियत किया। इस प्रकार उसने विन्दुग्रों ग्रौर रेखाग्रों के रूप में सारी वर्णमाला के लिए, यहां तक कि संख्याग्रों ग्रौर विराम-चिह्नों के लिए भी संकेत निश्चित कर दिये।

मोर्स की विन्दु ग्रौर रेखा वर्णमाला, जिसे 'मोर्स कूटलेख

प्रणाली'.कहा जाता है, आज तक भी ज्यों की त्यों चली आ रही है। अब बेतार दूरलेखन पद्धति शुरू हो जाने के कारण इसका महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है। यह कूटलेख प्रणाली पहले-पहल १९३८ के जनवरी मास में न्यूयार्क सिटी विश्वविद्यालय के श्यामपट्ट पर प्रकाशित की गई थी।

**पांच सुइयां और एक हत्यारा**

मोर्स और बैल ने वाशिंगटन में कांग्रेस (अमेरिका की संसद) के सामने तार (दूरलेखन) यन्त्र का प्रदर्शन किया था और वाशिंगटन से वाल्टीमोर तक पहली तार लाइन बनाने के लिए सार्वजनिक धन प्राप्त करने के लिए एक विधेयक तैयार किया गया था।

परन्तु ठीक उन्हीं दिनों अमेरिका एक आर्थिक संकट में फंसा हुआ था और वहां की कांग्रेस के सामने प्रथम तार लाइन बनाने के लिए धन की व्यवस्था करने से बढ़कर अन्य कई चिन्ताएं विद्यमान थीं।

मोर्स के मित्रों ने उसका साथ नहीं दिया। उसके आवेदनों का उत्तर तक प्राप्त नहीं हुआ। कई महीने बीत गये; उसके बाद वर्ष भी बीत गये; फिर भी वह अपने आविष्कार में लोगों की रुचि जगाने का यत्न करता रहा। इसका फल यह हुआ कि लोग उसे एक निरुपद्रव पागल समझने लगे। जब उसने 'सली' जहाज में बैठकर समुद्र पार किया था, तब से लेकर अब तक दस से भी अधिक वर्ष बीत चुके थे। अब उसने कांग्रेस के नाम अन्तिम निराशाभरी अपील करते हुए लिखा :

"यदि मुझे अब भी कोई उत्तर प्राप्त न हुआ, तो मैं सदा के लिए चित्रकला के काम में जुट जाऊंगा और तार (दूरलेखन) यन्त्र से कोई वास्ता न रखूंगा।"

अन्त में कांग्रेस पर असर पड़ा। ३ मार्च, १८४३ की कार्य-सूची में मोर्स विधेयक को अन्तिम मद के रूप में रखा गया। उस अधिवेशन में मोर्स स्वयं आधी रात तक उपस्थित रहा, परन्तु उसके बाद वह घर लौट गया, क्योंकि उसे लगा कि सारा मामला हाथ से जाता रहा है और कांग्रेस तार (दूरलेखन) यन्त्र के पक्ष में नहीं है। उसे लग रहा था कि अब निराशा अवश्यम्भावी है और वह उसे सह पाने में असमर्थ था। घर जाकर उसने अपने पास बचे हुए कुल पैसों को गिना। वे कुल ३७॥ सैंट (२ रुपये से कुछ कम) थे।

अगले दिन प्रातःकाल एक मित्र दौड़ता हुआ उसके कमरे में पहुंचा। "बधाई हो प्रौफेसर, तुम जीत गये। वह विधेयक ८३ के विरुद्ध ८९ के बहुमत से पास हो गया है।"

वाशिंगटन से बाल्टीमोर तक ४० मील की तार (दूर-लेखन) लाइन बनाने का काम तुरन्त शुरू हो गया। २४ मई, १८४४ को संसार की पहली तार लाइन का उद्घाटन हुआ। इसके एक छोर पर मोर्स स्वयं था और दूसरे छोर पर वैल था। परन्तु भेजे जाने के लिए कोई तार सन्देश थे ही नहीं। वस्तुतः किसी को यह बात समझ में नहीं आ रही थी कि इस नये संचार-साधन का क्या उपयोग किया जाये।

परन्तु दो दिन बाद एक महत्वपूर्ण समाचार बाल्टीमोर से वाशिंगटन भेजा गया। किसी को यह विश्वास ही न होता था

कि तार द्वारा समाचार इतनी तेज़ी से भेजा जा सकता है। परन्तु जब कुछ घंटे बाद उस समाचार के पहुंचने की डाक द्वारा पुष्टि हो गई, तब तो मोर्स की धूम मच गई। उसके बाद सन् १८७२ में ८१ वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु होने तक मोर्स को वापस मुड़ कर नहीं देखना पड़ा। जब न्यूयार्क के निकट देहात में स्थित उसके घर में उसकी मृत्यु हुई, उस समय भी मोर्स का हाथ अपने तार तन्त्र की कुंजी पर था, जो उसके घर का सम्बन्ध संसार के सब तार केन्द्रों से जोड़ती थी।

परन्तु इंग्लैंड में मोर्स की प्रणाली काफी समय तक प्रचलित नहीं हुई। कारण यह था कि उस देश में सर विलियम कुक और सर चार्ल्स ह्वीटस्टोन, दो भौतिकी वैज्ञानिकों द्वारा आविष्कृत अपनी अलग ही तार प्रणाली प्रचलित थी। सन् १८३७ में इन दो वैज्ञानिकों ने अपना तार (दूरलेखन) यन्त्र बनाया था, जिसमें पांच चुम्बकीय सुइयां और पांच तारें होती थीं। जब किसी तार में से विद्युत् गुजारी जाती थी, तब उसकी सूई एक फलक पर, जिसके ऊपर वह लगी होती थी, चारों ओर घूमती थी। इस फलक पर वर्णमाला के अक्षर लिखे रहते थे। एक-एक अक्षर का संकेत पांच सुइयों की विविध स्थितियों के द्वारा होता था।

पहली तार (दूरलेखन) लाइन ग्रेट वैस्टर्न रेलवे के साथ-साथ पैडिंगटन से स्लफ तक बनाई गई थी। परन्तु मोर्स के तार यन्त्र की भांति इसके लिए भी किसी ऐसे विशेष अवसर की आवश्यकता थी, जिससे यह प्रदर्शित किया जा सके कि यह यन्त्र क्या कुछ कर सकता है। ऐसा सुअवसर १ जनवरी,

१८४५ को उपस्थित हुआ, जबकि स्लफ़ से रेलगाड़ी पर चढ़ कर भाग निकलने वाला एक हत्यारा लन्दन में पकड़ा गया—पुलिस को तार द्वारा पहले ही उसकी सूचना मिल चुकी थी।

## बोस्टन में एक गर्म दिन

अलैग्जैंडर ग्राहम बैल का जन्म ऐडिनबरा में हुआ था। परन्तु उसकी शिक्षा-दीक्षा बोस्टन में हुई थी। वह गूंगों-बहरों का अध्यापक था। उसके शिष्यों में एक सुन्दर लड़की मेबल हब्बर्ड थी। उसका उस लड़की से प्रेम हो गया। यथासमय उन दोनों का विवाह हुआ। बैल ने बोस्टन में बिजली के सामान की एक दूकान के ऊपर दो कमरे लेकर वहां कुछ परीक्षण आरम्भ किये। उनके लिए पैसा मेबल के पिता ने दिया था।

बैल की सूझ शुरू यहां से हुई थी कि वह मनुष्य की आवाज़ के कम्पनों को बिजली के द्वारा इस रूप में ले आना चाहता था कि जिससे बहरे व्यक्ति उन कम्पनों को आंखों से देख सकें। इसके आगे एक स्थान से दूसरे स्थान तक मनुष्य की आवाज़ को भेज पाने की समस्या केवल एक छोटा सा कदम ही रह जाती थी।

बैल ने जो पहला नमूना बनाया, उसमें एक पारेषक था, जिसमें एक हाथघड़ी की कमानी एक सोने के वर्क के साथ लगा दी गई थी और इस कमानी को एक विद्युतीय चुम्बक के निकट रखा गया था। जब सोने के वर्क के पास कोई शब्द बोला जाता था, तब घड़ी की कमानी उस विद्युतीय चुम्बक के निकट कांपने लगती थी और इस प्रकार अपने कम्पनों द्वारा उस चुम्बक के

चारों ओर लिपटी हुई तार में से गुजरने वाली विद्युत् की धारा में अधिमिश्रण (घट-बढ़) करती थी। इस प्रकार घटती-बढ़ती विद्युत् की धारा ग्रहण यन्त्र तक ले जाई जाती थी। इस यन्त्र में एक और विद्युतीय चुम्बक रखा हुआ था। वह एक वैसी ही घड़ी की कमानी को अपनी ओर आकर्षित करता था और इस कमानी के कम्पन आस-पास की वायु में पहुंच जाते थे। यह यन्त्र काम करता था—हालांकि इसके एक छोर पर जो कुछ बोला जाता था, वह दूसरे छोर पर मुश्किल से ही समझ में आता था।

सन् १८७५ के जून मास में जब खूब गर्मी पड़ रही थी, बैल ग्रहण यन्त्र की इस्पात की कमानी से कुछ छेड़छाड़ कर रहा था और उसी समय उसका युवक सहायक वाटसन दूसरे कमरे में प्रेषण यन्त्र में लगी हुई कमानी को उसमें से आलस्य-पूर्वक निकालने का यत्न कर रहा था। वह कमानी उसमें चिपक गई थी और वाटसन उसे खोलना चाहता था। एकाएक बैल ने पुकारा : 'वाटसन, तुम अभी क्या कर रहे थे ? जो भी चीज़ जैसी है, उसे वैसी ही रहने दो; मैं अभी आकर देखता हूं।"

एक नई और धीमी सी आवाज़ की ओर बैल का ध्यान आकृष्ट हुआ था। आविष्कारक के सिवाय और किसी का ध्यान उसकी ओर न जाता। परन्तु उसने उस ध्वनि के महत्व को तुरन्त पहचान लिया। जब उसने पारेषक यन्त्र को देखा तो वह समझ गया कि क्या बात हुई थी। दैवयोग उसे सही रास्ता दिखला रहा था।

हुआ क्या था ? जो कमानी अन्दर चिपक गई थी और जिसे

वाटसन निकाल रहा था, उसके कारण विद्युतीय चुम्बक में एक अविराम धारा उत्पन्न होने लगी थी, जबकि अब तक हिलती हुई कमानी के कारण केवल सविराम अधिमिश्रण (विद्युत् की घट-वढ़) ही उत्पन्न होते थे। स्थायी बन्द विद्युत् परिपथ, जो संयोगवश ही उस अचल कमानी के कारण वन गया था, इस समस्या का सही हल था।

नौ महीने तक वैल और वाटसन इस नये नमूने को सुधारने के लिए काम में जुटे रहे। सोने के वर्क की जगह लोहे की एक पतली पत्ती लगाई गई। विद्युत् चुम्बक स्थायी चुम्बक वना दिये गये, जिनके चारों ओर तार की कुंडलियां लिपटी हुई थीं और ग्रहण तथा प्रेषण यन्त्रों को छोटी-छोटी नलियों का सुविधा-जनक रूप दे दिया गया। इनमें से एक को मुंह के सामने रख कर बोलना होता था और दूसरे को कान के पास लगाकर सुनना होता था।

मार्च १८७६ में यह दूरभाष (टेलीफोन) इस योग्य हो चुका था कि उसका उपयोग किया जा सके। इसका प्रेषण यन्त्र मकान की ऊपर की मंजिल में था और ग्रहण यन्त्र (चोंगा) उसी मकान की निचली मंजिल में। इस नये उपकरण में पहले पहल जो शब्द बोले गये, वे वैल के ये अनौपचारिक शब्द थे (ये विख्यात हो गये हैं) : "वाटसन, जरा नीचे आओ। मुझे तुमसे कुछ काम है।" एक मिनट बाद वाटसन आकर वैल के सामने उपस्थित हो गया—यह इस बात का प्रमाण था कि दूरभाष सचमुच काम कर रहा था।

**बटन के धागे से प्रकाश**

अब तक हम अपने इस वर्णन में आविष्कार और अन्वेषण जगत् के एक सबसे महान नाम का उल्लेख नहीं कर पाये हैं—वह था टामस अल्वा ऐडिसन। परन्तु अब उसका उल्लेख किये बिना नहीं रहा जा सकता।

इस व्यक्ति का, जिसने अपने जीवनकाल में २५०० से अधिक आविष्कार पेटेन्ट कराये, जन्म सन् १८४७ में मिलान में हुआ था, जो संयुक्त राज्य अमेरिका में ईरी झील के किनारे एक छोटा सा नगर है। जब ऐडिसन अभी ११ वर्ष का बालक ही था, तभी उसकी परिपक्व व्यवसाय बुद्धि इस रूप में प्रकट होने लगी थी—जो उसके आगामी जीवन में उसे यों ही अचानक बन जाने वाले आविष्कारकों से बिल्कुल अलग दिखलाने वाली थी—कि वह बिक्री के लिए सब्जियां उगाने लगा था। उसका अगला कदम यह था कि वह अपनी सब्जियों को रेलगाड़ी से अपने सबसे निकट के शहर डैट्राइट तक ले जाने लगा। उसके बाद उसने अपने उस समय का, जो उसे गाड़ी में बिताना पड़ता था, उपयोग रासायनिक परीक्षणों के लिए करना शुरू कर दिया। वह बीच में पड़ने वाले स्टेशनों पर डैट्राइट में छपने वाले अखबार भी बेचा करता था और अन्त में उसने एक छोटा सा मुद्रण यन्त्र खरीद लिया और वह रेलगाड़ी के सामान रखने के डिब्बे में अपना अखबार छापने लगा।

ऐडिसन ने एक स्टेशन मास्टर के लड़के को रेलगाड़ी के नीचे आ जाने से बचाया था। इसके प्रतिफल के रूप में उस स्टेशन मास्टर ने ऐडिसन को मोर्स कूटलेख सिखा दिया और ३

महीने के प्रशिक्षण के बाद उसे तार (दूरलेखन) यन्त्र परिचालक के रूप में उसकी पहली नौकरी मिली। परन्तु उसका अपना उद्देश्य कहीं अधिक ऊंचा था। जेब में केवल पांच रुपये लिये वह न्यूयार्क पहुंचा और भाग्य ने तुरन्त उसके सामने एक ऐसा सुअवसर प्रस्तुत किया, जिससे वह अपना तकनीकी कौशल प्रदर्शित कर सके। एक गैर-सरकारी व्यवसाय संस्था ने तार की लाइन लगा कर एक प्रकार की 'टिकर' मशीनें लगाई हुई थीं, जिनके द्वारा महाजनों और शेयरों के दलालों को वाल स्ट्रीट में शेयरों के ताज़ा भावों की सूचना दी जाया करती थी। उस समय एक वित्तीय संकट सा आया हुआ था और तभी वह मशीन बिगड़ गई। ऐडिसन ने न केवल उस मशीन की मरम्मत कर दी, अपितु उससे भी अच्छी एक मशीन का खाका बनाकर दे दिया। उस कम्पनी ने ऐडिसन से उस मशीन के पेटेन्ट के अधिकार लगभग दो लाख रुपये में खरीद लिये।

इस राशि से उसने अपना कारखाना स्थापित किया और वहां वह अपनी आविष्कारी सूझों का विकास करने लगा।

दिसम्बर १८७६ में एक रात वह एक तार 'पुनरावर्तक' पर काम कर रहा था। यह पुनरावर्तक एक ऐसा यन्त्र था, जो आने वाले मोर्स संकेतों को स्वतः ग्रहण करता था और उन्हें और अधिक तीव्र गति से आगे भेज देता था। उस समय उस पुनरावर्तक यन्त्र की एक घड़ीनुमा मशीन एकाएक काबू से बाहर हो गई और उस मशीन की चक्कर काटती हुई चकत्ती पर आने वाले तार के संकेत कानों से सुनाई पड़ने लगे—उनकी आवाज़ ऐसी थी, जैसे कोई झल्लाई हुई महिला बड़बड़ा रही हो। उस

समय ऐडिसन ने इस बात को समझ लिया कि यह बिल्कुल अपरिष्कृत रूप में, एक ऐसा यन्त्र था, जो किसी ध्वनि का पुनरुत्पादन कर सकता था।

इसके परिणामस्वरूप उसने फोनोग्राफ (ध्वनिलेखी) का आविष्कार किया। इस फोनोग्राफ में एक घूमता हुआ बेलन होता था, जिसके ऊपर रांगे की एक पतरी चढ़ी होती थी, एक सूई होती थी और एक झिल्ली। जब ध्वनि की तरंगों के कारण झिल्ली कांपने लगती थी, तब उसके साथ लगी हुई, सूई घूमती हुई रांगे की पतरी पर चिह्न बनाने लगती थी। इस प्रकार अभिलिखित इस ध्वनि को दुबारा सुनने के लिए झिल्ली के ऊपर एक बड़ा भोंपू लगाया गया था।

जब यह यन्त्र बनकर परखे जाने के लिए तैयार हो गया, तब ऐडिसन ने उस झिल्ली के सामने मुंह करके जो कुछ उसके मन में तुरन्त आया, बोल दिया—यह एक बच्चों की कविता थी—'मेरी के पास था एक छोटा मेमना।' उसके बाद सूई को उठाकर फिर वहां रख दिया गया, जहां से उसने पहले चलना शुरू किया था और भोंपू को झिल्ली के ऊपर लगा दिया गया और ऐडिसन ने उस बेलन को एक हत्थी से घुमाना शुरू किया।

ऐडिसन ने बाद में बताया : "मुझे अपने सारे जीवन में ऐसा रोमांचकारी आनन्द और कभी नहीं हुआ था।" उस भोंपू में से उस बच्चों की कविता के शब्द टीन की सी और मन्द आवाज में सुनाई पड़ने लगे, परन्तु वे इतने स्पष्ट थे कि साफ सुनाई पड़ते थे। इस प्रकार मनुष्य की आवाज का पहली बार रिकार्ड बनाया गया।

फोनोग्राफ बहुत सफल रहा। ऐडिसन ने पहले इस यन्त्र का नाम फोनोग्राफ रखा था, परन्तु दस साल बाद जब रांगे की पतरी का स्थान एक चपटी कूचुक (कच्चा रबड़) की चकत्ती ने ले लिया, तब इस नये यन्त्र का नाम ग्रामोफोन रख दिया गया। परन्तु उस समय तक ऐडिसन एक और समस्या में उलझ चुका था।

आर्कलैम्प बहुत समय से काम में आ रहे थे। परन्तु एक तो वे खर्चीले और खतरनाक होते थे और उनका निरन्तर समंजन करते रहने और उन पर ध्यान रखने की आवश्यकता होती थी। ऐडिसन का ध्यान इस बात पर गया कि यदि कार्बन के रूप में बदल लिये गये कागज में से विद्युत् की धारा गुजारी जाये, तो उसकी छोटी-छोटी पट्टियां कुछ क्षणों तक खूब चमकीला और उद्दीप्त प्रकाश देती हैं। उसने यह समझ लिया कि यदि किसी वायुरहित शून्य नली में कुछ अधिक उपयुक्त सामग्री को रख कर उसमें से विद्युत् गुजारी जाये, तो प्रकाश कहीं अधिक देर तक चमकता रहेगा।

उसने असीम धैर्य और सूझ-बूझ के साथ इस प्रकार की सामग्री की खोज की। शून्य स्थान वाले लट्टू में चमकने के लिए उस वस्तु को पहले कार्बन बना डालना होगा। मैनलो पार्क में उसकी प्रयोगशाला में जो कोई भी वस्तु उसके हाथ आ सकी, उसी को उसने कार्बन बना कर देखा।

एक रात जब वह बैठा हुआ यह विचार कर रहा था कि अब और किस वस्तु को कार्बन बना कर देखा जाये—उस समय रात काफी हो चुकी थी और वह अपनी मेज के पास बैठा हुआ

था—तव उसकी आंख उसकी जाकेट के वटन पर जा पड़ी, जो कि ढीला होकर झूल रहा था। उसने अन्यमनस्कता के साथ उस वटन को खींच लिया और उसके वाद जाकेट से जो धागा लटका रह गया, उसे वह अपनी अंगुली पर लपेटने लगा। तभी उसे ध्यान आया : "क्यों न इस मामूली सिलाई के धागे को अज़मा कर देखा जाये ?" वह अपनी प्रयोगशाला में गया। वहां शीशे के ऐसे लट्टुओं की कतारें की कतारें चौखटों पर रखी हुई थीं, जिनमें से वायु निकाल ली गई थी। धागे को तेज आंच में तपा कर कार्वन वनाया गया और वहुत सावधानी से उसे शीशे के एक वायुरहित लट्टू में रखा गया। ऐडिसन ने स्विच दवाकर विद्युत् की धारा उसमें छोड़ दी। वह कार्वनीकृत धागा एक आनन्द-दायक और हल्के प्रकाश से चमकने लगा और चमकता रहा। वह तव तक नहीं वुझा, जव तक कि अन्य वाकी नमूनों की भी परख न कर ली गई। वह चालीस घंटे तक चमकता रहा। इस प्रकार उद्दीप्त बिजली वत्ती का आविष्कार हुआ।

## लन्दन के एक पार्क में फैरेडे

उद्दीप्त विजली की वत्ती का आविष्कार करना एक वात थी और समूचे शहरों को विजली की वत्ती से प्रकाशित करना बिल्कुल दूसरी वात। सिद्धान्ततः इस समस्या का हल महान अंग्रेज़ भौतिकी वैज्ञानिक माइकेल फैरेडे ने किया था। उसने लन्दन में रायल इंस्टीट्यूशन में अपनी प्रयोगशाला में औस्टैंड, स्टर्जियन और ऐम्पियर द्वारा वर्णित विद्युत् चुम्बक सम्वन्धी सब परीक्षणों को दुहराया। परन्तु उसका मेधावी मस्तिष्क

और भी आगे गया। उसने सोचा कि यदि विद्युत् चुम्बकत्व को उत्पन्न कर सकती है, तो शायद चुम्बकत्व भी विद्युत् को उत्पन्न कर सकता हो। यह एक बहुत ही कुशलतापूर्ण तर्क था। फिर भी वह काफी लम्बे समय तक इसके आगे नहीं बढ़ सका। "इसे किया किस प्रकार जाये" यह बात उसकी पकड़ में नहीं आ रही थी। जब भी कभी वह घूमने जाता, वह एक चुम्बक और तार की कुंडली अपनी जेब में ले जाता और बीच-बीच में सोचते-सोचते उन्हें जेब से निकालता और ध्यान से उन्हें देखा करता।

अन्त में एक दिन उसने इस समस्या का समाधान कर डाला। लन्दन के एक पार्क में प्रातःकाल भ्रमण करते-करते वह एकाएक रुक कर खड़ा हो गया और तब उसने अपने मन की आंख से उस समाधान को देख लिया। चुम्बकत्व से विद्युत् उत्पन्न करने का तरीका यह है कि उसे गति दी जाये। जब किसी चुम्बक को तार की कुंडली में डाला जाता है, तब विद्युत् की धारा उत्पन्न हो जाती है, जो एक दिशा में बह रही होती है; जब चुम्बक को निकाल लिया जाता है, तो विद्युत् की धारा उससे उल्टी दिशा में बहने लगती है। फैरेडे ने यह पता चला लिया कि जब भी कोई विद्युत् संवाहक चुम्बक के 'क्षेत्र' के बीच में आ पड़ता है, तभी धारा उत्पन्न हो जाती है—यान्त्रिक गति, चुम्बक की गति अथवा उसके आर्मेचर के रूप में बंधे हुए विद्युत् संवाहक की गति विद्युत् ऊर्जा में बदल जाती है।

सन् १८३१ में फैरेडे ने अपने साथी वैज्ञानिकों को इस

प्रकार के विद्युत् उत्पन्न करने वाले यन्त्र का, जिसे 'डायनमो' कहते हैं, एक नमूना दिखलाया था। उस यन्त्र में एक शक्ति-शाली चुम्बक लगा हुआ था और उसके दो ध्रुवों के बीच में एक तार की कुंडली घुमाई जाती थी। जब तक फैरेडे हत्थे से उसे घुमाता रहता था, तब तक वह यन्त्र विद्युत् उत्पन्न करता रहता था।

परन्तु इसके बाद लगभग चालीस वर्ष बीत गये और तब कहीं जाकर ऐडिसन ने अपनी मैनलो पार्क की प्रयोगशाला में प्रकाश देने के लिए विद्युत् उत्पन्न करने के लिए पहले-पहल एक व्यावहारिक विद्युत् उत्पादक यन्त्र बनाया। उस समय लोग दूर-दूर से इस नये चमत्कार को देखने के लिए आये थे। उसके बाद सितम्बर १८८२ में न्यूयार्क के एक मुहल्ले को २३०० उद्दीप्त लैम्पों से प्रकाशित करने के लिए आवश्यक बिजली उत्पन्न करने के लिए उसने एक और विद्युत् उत्पादक यन्त्र बनाया।

इससे पहले सन् १८७९ में ही बर्लिन की महान औद्योगिक प्रदर्शनी में जाने वाले लोगों ने एक और आधुनिक चमत्कार देखा था—यह एक रेलगाड़ी थी, जो बहुत ही मज़े से और आवाज़ किये बिना पटरियों पर चल रही थी। इसमें कोई भाप का इंजिन नहीं था, कोई 'सांय-सांय' या 'फक-फक' की आवाज़ नहीं थी और किसी प्रकार का धुआं या राख भी नहीं उड़ती थी। यह विद्युत् से चलने वाली पहली गाड़ी थी, जो इस प्रकार के लाखों वाहनों—भूगर्भीय रेलगाड़ियों, ट्राम गाड़ियों, उप-नगरीय तथा दूर-दूर जाने वाली तीव्रगामी गाड़ियों की अग्रदूत

थी : यह ट्राली बसों की भी अग्रदूत थी। इसका अभिकल्प बनाने वाला जर्मन इंजीनियर सियेमन्स एक वस्तुतः कार्यक्षम विद्युत् मोटर बना पाने में सफल हुआ था—यह विद्युत् मोटर वस्तुतः विद्युत् उत्पादक यन्त्र का ठीक विलोम है, क्योंकि यह विद्युत् की धारा को विद्युत् चुम्बक और तार की कुंडली के प्रयोग द्वारा फिर यान्त्रिक ऊर्जा में बदल देती है।

तब से लेकर अब तक विद्युत् ने दैनिक जीवन में महान परिवर्तन कर डाला है। कल्पना कीजिये कि हमें केवल एक सप्ताह तक विद्युत् के बिना रहना पड़े, तो क्या होगा : हमारे सारे उद्योग और संचार के साधन, हमारा अधिकांश परिवहन और हमारे व्यक्तिगत जीवन का काफी बड़ा अंश लगभग बिल्कुल ठप्प ही हो जायेगा। फिर भी लगभग ७५ वर्ष पहले तक मनुष्य को यह तक मालूम न था कि इस महान शक्ति का, जिसे कि प्रकृति ने उसे दिया था, क्या उपयोग किया जाये। अब उसने बिजली को अपने वश में कर लिया है।

अध्याय ४

# जादू का चर्खा

अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक भी इंग्लैंड गांवों और खेतों का देश था—उन किसानों का देश, जिन्हें यह मालूम था कि वे मरते दम तक गरीव रहेंगे और उन भूस्वामियों का देश, जो खेतिहरों के श्रम पर जीते थे। इन दो श्रेणियों के वीच में वे एक तो कारीगर थे, जो उन वस्तुओं को तैयार करते थे, जिन्हें वनाना आवश्यक होता था—और इनमें से अधिकांश वस्तुएं हाथ से वनाई जाती थीं—और दूसरे वे व्यापारी, जो आवश्यक वस्तुओं का विदेशों से आयात करते थे। मनुष्यों का वहुत बड़ा भाग गांवों में रहता था और भूमि से ही अपना निर्वाह करता था और वस्तुतः बड़ा शहर केवल एक ही था—वह था लन्दन।

### उड़नढरकी और कतन-जेनी

इसके ७० वर्ष बाद इंग्लैंड वड़े नगरों का देश वन गया था और लन्दन तो इतना बड़ा हो गया था कि पहचाना भी नहीं जाता था। परन्तु इन नये नगरों में रहना वहुत आनन्ददायक नहीं था। ऊंची-ऊंची चिमनियों की कतारें आकाश को धुएं से कलुषित करती रहती थीं। बड़े-बड़े और वदसूरत कारखानों

की छायाएं उन गन्दी गलियों पर पड़ती थीं, जिनमें छोटे-छोटे वायुरहित और गन्दे ढंग से बने हुए मकान थे। इन मकानों में मनुष्यों का एक नया वर्ग निवास करता था—ये थे औद्योगिक श्रमिक।

यह कैसे हुआ कि इंग्लैंड किसानों के देश से बदल कर निर्माताओं का देश बन गया ?

इसका मुख्य कारण यह था कि आविष्कारकों ने—अंग्रेज आविष्कारकों ने—हाथ के बजाय मशीनों से वस्तुएं तैयार करने के उपाय खोज निकाले थे। सूती वस्त्र उद्योग वह पहला उद्योग था, जिसमें पुराने ढंग के परम्परागत हस्त शिल्प के बजाय आधुनिक बड़े पैमाने पर उत्पादन प्रारम्भ हुआ। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक अधिकांश किसान गृहिणियां स्वयं सूत कातती थीं और अपने लिए कपड़ा बुनती थीं, जबकि नगरों में बड़ी संख्या में जुलाहे रहते थे, जो बाकी जनता और इंग्लैंड के समुद्र पार उपनिवेशों के लिए ऊनी और सूती वस्त्र तैयार करते थे।

सूती वस्त्रों की मशीनों और साधनों के इन आविष्कारकों में से अनेक स्वयं हाथ से काम करने वाले कारीगर रहे थे—वे कोई इंजीनियर या वैज्ञानिक नहीं थे। इनमें सबसे पहला जौन के था, जो लंकाशायर में बरी नामक स्थान का एक गरीब जुलाहा था। जब वह ढरकी को इधर-उधर फेंकता, पैरों से करघे को ऊपर-नीचे करता और तागे को पहले बुने जा चुके कपड़े के साथ कस कर मिलाने के लिए भारी थापी को अपनी ओर खींचता उस समय वह प्रायः यह सोचा करता था कि क्या

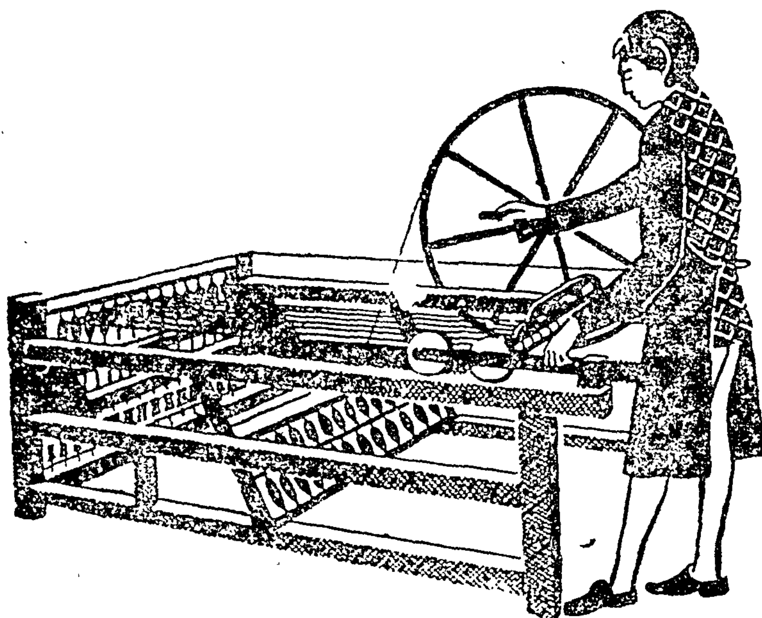
कोई ऐसा तरीका नहीं हो सकता, जिससे कि इस सारे काम को करने में कुछ कम थकान हो। उसे सबसे अधिक कष्ट ढरकी फेंकने में होता था, जिसके कारण उसकी बाहें दुखने लगती थीं।

उसने बुनाई के काम के इस अंश को सरल बनाने के लिए एक बढ़िया उपाय सोच निकाला और उसने एक नये प्रकार की ढरकी का आविष्कार किया, जिसे बाद में 'उड़नढरकी' कहा जाने लगा। करघे के दोनों ओर उसने दो छोटी-सी डिबियाएं सी लगा दीं, जिनमें ढरकी ताने के तारों के बीच में से गुजर कर जा पड़ती थी। प्रत्येक डिबिया में एक छोटी-सी छड़ लगी रहती थी, जिसका एक सिरा डोरी से बंधा रहता था। जब डोरी को खींचा जाता था, तो वह छड़ आकर ढरकी से टकराती थी और इस प्रकार ढरकी को करघे के पार दूसरी ओर फेंक देती थी, जहां वह उसी प्रकार की दूसरी डिबिया में जा टिकती थी। इसके बाद दूसरी ओर की डोरी को खींचा जाता था और ढरकी झटका खाकर उड़ती हुई फिर वापस लौट आती थी। के ने दोनों डोरियों को एक ही हत्थे में बांध दिया और उस हत्थे को हिला कर वह बिना विशेष प्रयत्न किये ढरकी को इधर या उधर फेंक सकता था।

इसका परिणाम यह हुआ कि अब वह पहले की अपेक्षा कहीं अधिक तेज़ी से काम कर सकता था और बरी के अन्य जुलाहों को यह डर लगा कि इस उड़नढरकी द्वारा, जिसे के ने सन् १७३३ में पेटेन्ट करा लिया था, इतना अधिक कपड़ा बनाया जा सकेगा कि जुलाहों की आवश्यकता बहुत कम हो जायेगी। इसके फलस्वरूप एक अच्छा खासा दंगा हो गया। कुछ जुलाहों

की भीड़ उसके मकान पर टूट पड़ी। जौन के बड़ी मुश्किल से जान बचाकर भाग सका। वह फिर कभी बरी वापस नहीं लौटा। पहले वह लीड्स गया और उसके बाद फ्रांस चला गया। वहां बहुत ही गरीबी में उसकी मृत्यु हुई।

जब के ने अपनी उड़नढरकी का आविष्कार किया था, उसके ३५ साल बाद एक और गरीब जुलाहे को अपने एक महत्व-पूर्ण आविष्कार के फलस्वरूप ऐसा ही कष्ट भुगतना पड़ा। ब्लैकबर्न का निवासी जेम्स हारग्रीव्ज़ एक बढ़िया जुलाहा था।



हारग्रीव्ज़ की कतन-जेनी (१७७०)

परन्तु उसे प्रायः इस कारण बेकार रहना पड़ता था, क्योंकि उसके पास सूत कम पड़ जाता था। वह केवल उस सूत पर

निर्भर रहता था, जो उसकी पत्नी जेनी कातती थी। और वह बेचारी तब तक कातती रहती थी, जब तक कि उसकी उंगलियां दुखने न लगतीं। एक दिन उनके सात बच्चों में से एक ने अचानक चरखे को उलट दिया। तब हारग्रीव्ज़ ने देखा कि चरखा अपनी गति मात्रा के ज़ोर से स्वयं ही काफी देर तक घूमता रहा। हारग्रीव्ज़ ने मन ही मन सोचा : "क्या एक चरखे में एक के बजाय दो तकुए नहीं लगाये जा सकते ? यदि दो तकुए लग जायें, तो उससे मुझे दुगना सूत मिल सकेगा।"

बेचारे जौन के के साथ जो कुछ बीती थी, उसका उसे पता था। इसलिए उसने बिल्कुल गुप्त रूप से अपने आविष्कार का काम शुरू किया। उसने यह देखा कि एक चरखे से केवल दो ही नहीं, अपितु आठ तकुए चलाये जा सकते हैं। उसने अपने इस यन्त्र का नाम अपनी पत्नी के सम्मान में 'कतन-जेनी' रखा।

परन्तु उसका भेद खुल हो गया। ब्लैकबर्न में रहने वाले अन्य जुलाहों ने उसकी मशीन को तोड़कर चूर-चूर कर दिया और हारग्रीव्ज़ तथा उसके परिवार को ब्लैकबर्न से बाहर खदेड़ दिया।

हारग्रीव्ज़ वहां से नौटिंघम चला गया और वहां उसने एक नया यन्त्र बनाया, जिसमें आठ ही नहीं अपितु ती स तकुए चलते थे। लोग उसके पास आ-आकर उससे इस प्रकार की मशीनें अपने लिए बनवाने लगे। हारग्रीव्ज़ ने उनके लिए इस प्रकार के यन्त्र बनाये, पर जब उसने इस यन्त्र को पेटेन्ट कराने के लिए आवेदन किया, तो उसे अस्वीकृत कर दिया गया। इस प्रकार इस आविष्कारक को भी अपने प्रतिभासम्पन्न मस्तिष्क का लाभ नहीं उठाने दिया गया।

**एक नाई का आविष्कार**

रिचर्ड आर्कराइट जुलाहा नहीं था। फिर भी वह हाथ से काम करने वाला कारीगर तो था ही—नाई। सन् १७५० के आस-पास बोल्टन में एक तहखाने में उसकी एक छोटी-सी दूकान थी।

उसने कई कतन-जेनियां देखी थीं और बहुत बार जुलाहों को यह शिकायत करते सुना था कि उन यन्त्रों का सूत उतना बारीक और एकसार नहीं होता, जितना कि पुराने एक तकुए वाले चरखों पर कता हुआ होता था। उसे एक विचार सूझा।

आर्कराइट में यान्त्रिक कौशल तो था नहीं, इसलिए उसने एक घड़ीसाज़ की सहायता से एक यन्त्र बनाया, जो कतन-जेनी की अपेक्षा अधिक अच्छा और साथ ही जल्दी भी सूत तैयार करता था। कारण यह था कि उसका यह यन्त्र एक नये ढंग से, शक्ति द्वारा चलाया जाता था। उसने इस यन्त्र का नाम 'कतन-चौखटा' रखा। परन्तु क्योंकि यह पानी की शक्ति से चलता था, इसलिए अन्त में इसका नाम 'पनचौखटा' पड़ गया। यह यन्त्र ऊन या रूई को दबा कर पहले चपटी और लम्बी पूनियों के रूप में बदलता था और उसके बाद उन्हें सूत के रूप में बट देता था।

इस आविष्कारक नाई को यह भली भांति मालूम था कि वह विपत्ति को बुलावा दे रहा है। ज्योंही बोल्टन के जुलाहों में क्रोध और भय के चिह्न दिखाई पड़ने शुरू हुए, वह स्वयं ही उस स्थान को छोड़ कर नौटिंघम चला गया और वहां उसने अपनी सूती मिल बनाने के लिए दो धनी व्यापारियों से सहा-

यता मांगी। उसी समय (सन् १७६६ में) उसने अपने कतन-चौखटे को पेटेन्ट करवा लिया।

उसकी मिल, जो सबसे पहले सूती कारखानों में से एक थी, आर्थिक दृष्टि से बहुत सफल रही। अन्य निर्माताओं ने उसे अनुज्ञा (लाइसेंस) शुल्क दिये बिना कतन-चौखटे बना लिये, परन्तु अब उसके पास इतना काफी पैसा था कि वह न्यायालय में जाकर उनसे पैसे वसूल कर सकता। उसने डर्बीशायर में और भी कारखाने बनाये और अपने यन्त्रों पर काम करने के लिए मजदूरी पर कारीगर रख लिये। इस प्रकार भूतपूर्व नाई सूती उद्योगपति का एक आदिरूप (प्रारम्भिक नमूना) बन गया—इंग्लैंड की सामाजिक संरचना में यह एक नया वर्ग था और औद्योगिक क्रान्ति का एक विशेषतासूचक तत्व था। राजा जार्ज तृतीय ने उसे 'नाइट' की पदवी प्रदान की और जब सन् १७६२ में आर्कराइट की मृत्यु हुई, तब वह अपने पीछे लगभग पैंसठ लाख रुपये की सम्पत्ति छोड़ गया।

इस दिशा में अगला सुधार फिर एक और गरीब आदमी के घर में ही हुआ। सैमुअल क्रौम्पटन बोल्टन के एक किसान का पुत्र था। विद्यालय छोड़ने के बाद तुरन्त उसे सूत कातने का काम शुरू कर देना पड़ा। वह सारे दिन अकेला और चुपचाप बैठा सूत काता करता, क्योंकि उसकी मां नें उसे कह रखा था कि इतना सूत तो उसे कातना ही होगा। उसे अपनी उम्र के अन्य बालकों के साथ खेलने के लिए भी समय नहीं मिलता था।

जब उसने हारग्रीव्ज़ की कतन-जेनी के विषय में सुना, तब उसकी आयु बीस वर्ष से भी अधिक हो चुकी थी। वह आविष्कारक

हारग्रीब्ज़ से मिला और उससे एक कतन-जेनी खरीद लाया। परन्तु जब उसने उस पर काम शुरू किया, तब उसे बड़ी निराशा हुई। बारीक और नरम सूत इस मशीन पर टूट जाता था और इसका उपयोग लम्बे तागे कातने के लिए, जो करघे पर ताने के लिए आवश्यक होते थे, नहीं किया जा सकता था, और न इस पर वह बारीक सूत ही काता जा सकता था, जो मुलायम मलमल बुनने के लिए आवश्यक था, जो उन दिनों युवतियों में बहुत लोकप्रिय हो रहा था। टूटे हुए तार को जोड़ने के लिए सैमुअल क्रौम्पटन को बहुत समय बरबाद करना पड़ता था। वह लगातार घंटों तक यह सोचा करता कि किस प्रकार एक अधिक भरोसे के और बढ़िया कताई-यन्त्र का निर्माण किया जा सकता है।

**भूतों का कमरा**

अन्त में उसे लगा कि उसे इस समस्या का हल मिल गया है और उसने लकड़ी से एक यन्त्र बनाना शुरू किया। जब उसे इस काम के लिए कोई उपकरण खरीदने होते, तो वह बोल्टन प्रेक्षागार में वाद्यवृन्द (आर्कैस्ट्रा) में वायलिन बजा कर उसके लिए आवश्यक धन कमा लिया करता। परन्तु उसे यह भय लगा रहता था कि कहीं उसकी महत्वाकांक्षापूर्ण कल्पनाओं के कारण उसके अपने परिवार के लोग उसकी खिल्ली न उड़ायें और इस-लिए वह अपने इस यन्त्र को बनाने का काम एक बेकार पड़े कमरे में काफी रात बीते ही किया करता था। जब उसकी माता और बहनों को रात के सन्नाटे में विचित्र आवाज़ें सुनाई पड़ने लगीं, तो उन्हें यह विश्वास हो गया कि उस जगह भूत आने

लगे हैं। अन्त में उन्होंने एक दिन इसका पता चलाने के लिए हिम्मत बटोरी और उन्होंने उस भूत का पता चला लिया—और इस प्रकार सैमुअल का रहस्य खुल गया।

पांच वर्ष तक वह अपने इस आविष्कार पर काम करता रहा। उसका यत्न यह था कि हारग्रीव्ज़ और आर्कराइट के आविष्कारों की अच्छाइयों को मिला कर एक नया आविष्कार कर लिया जाये। इस कारण उसने अपने इस नये यन्त्र का नाम 'खच्चर' रखा। जिस प्रकार खच्चर गधे और घोड़े के बीच की वस्तु होता है, उसी प्रकार सैमुअल की यह मशीन कतन-जेनी और कतन-चौखटे के बीच की वस्तु थी। उसने सन् १७७६ में इसे बना कर पूरा कर दिया।

जो सूत वह तैयार करता था, उसे वह बोल्टन में बेचता था। कुछ समय बाद जिज्ञासु जुलाहों और कपड़े के व्यापारियों ने यह जानने की चेष्टा की कि वह अद्भुत सूत किस प्रकार तैयार किया जाता है। वे क्रौम्पटन पर जासूसी करने लगे। कुछ लोग अंधेरा होने पर उसके मकान में ताक-झांक करते; कुछ अन्य लोगों ने सीढ़ियां लगा कर उसकी खिड़की में से अन्दर देखने की कोशिश की; परन्तु वे यह पता चलाने में असमर्थ रहे कि यह नया यन्त्र इतना बढ़िया काम क्यों करता था। असल बात यह थी कि क्रौम्पटन ने उसी प्रकार के बेलनों का प्रयोग किया था, जैसे कि आर्कराइट के चौखटे में प्रयुक्त हुए थे और सूत को बटने और आगे की ओर खींचने की प्रणाली का उपयोग भी उसने किया था, जैसा कि हारग्रीव्ज़ के यन्त्र में था। परन्तु बेलन और तकुओं का सम्बन्ध आपस में इस प्रकार जोड़ा गया

था कि जब तागा तकुए पर लिपटने लगे, तब वह ढीला रहे और उस पर तनाव न पड़े, जिससे वह टूटे नहीं। क्रौम्पटन के 'खच्चर' में बीस तकुए थे। आज के सूती वस्त्रों के कारखानों में भी यह सबसे महत्वपूर्ण यन्त्र है, परन्तु अन्तर इतना है कि आधुनिक 'खच्चर' में १३५० तक तकुए हो सकते हैं।

सरकार ने उसे लगभग पैंसठ हजार रुपये उपहार के रूप में दिये। उसने इस धनराशि से अपना एक कारखाना बनाया, परन्तु क्योंकि उसे व्यवसाय के मामलों का अनुभव नहीं था, इसलिए उसका प्रयास असफल रहा और वह सारा धन गंवा बैठा।

वह ७४ वर्ष की आयु तक जीवित रहा और अपने अन्तिम वर्षों में बहुत थोड़ी-सी पेन्शन की रकम से अपना गुजारा करता रहा। फिर भी वह काफी प्रसन्न रहता था, क्योंकि उसे वायलिन बजाने में बहुत आनन्द आता था। जब १८२७ में उसकी मृत्यु हुई, तब इंग्लैंड का वह महान परिवर्तन अपनी पूर्णता तक पहुंच रहा था, जिसका श्रेय उसे तथा सूती वस्त्र बनाने के यन्त्रों के अन्य आविष्कारकों को था।

### हास्यास्पद पादरी

जौन के की उड़नढरकी ने बुनाई की मशीनों की गति तीव्र कर दी थी। कतन-जेनी, कतन-चौखटे और अन्त में 'खच्चर' ने सूत की कताई की गति न केवल इतनी बढ़ा दी कि उनसे करघों के लिए सूत की मांग पूरी हो सके, अपितु ये यन्त्र उससे कहीं अधिक सूत तैयार करने लगे, जितना कि करघों द्वारा बुना जा सकता था। अब करघों की चाल बहुत धीमी प्रतीत होती थी। सूत बहुत बड़ी मात्रा में प्राप्त होने लगा था और जुलाहे और

भी तेज़ी से काम कर सकने वाले किसी यन्त्र की खोज में थे। जिस व्यक्ति ने ऐसा यन्त्र बनाया, वह कोई कारीगर नहीं, अपितु एक पादरी था।

उसका नाम डाक्टर ऐडमंड कार्टराइट था। उसने कभी करघा देखा तक न था और उसे बुनाई के विषय में भी कुछ ज्ञान न था। सन् १७८४ में एक रात नौटिंघम की एक सराय में यन्त्रों के सम्बन्ध में उसकी किसी से बहस हो गई।

उसके एक मित्र ने शिकायत-सी करते हुए कहा : "ये नये यन्त्र हमारे लिए अभिशाप हैं। ये अशान्ति और भय उत्पन्न करते हैं। यदि इनका आविष्कार न हुआ होता, तो पुराने अच्छे दिनों की भांति अब भी सब कुछ अच्छा होता।"

"यह बिल्कुल बेहूदा बात है।" एक और व्यक्ति ने कहा। "ये यन्त्र करोड़ों लोगों को, भुखमरी में जीवन बिताने के बजाय सभ्यता के फलों का उपभोग करने में सहायता देंगे। हमें आवश्यकता इस बात की है कि और भी अधिक और बढ़िया यन्त्र बनाये जायें। उदाहरण के लिए, इस समय हमें एक ऐसे यन्त्र की आवश्यकता है, जो कपड़ा बुन सके। हाथकरघा बहुत ही धीमे काम करता है। इस प्रकार का यन्त्र कातने वालों को बराबर काम देता रहेगा और प्रत्येक व्यक्ति के पास करने के लिए काफी काम होगा।"

"बुनने वाला यन्त्र ? असम्भव !" पहले व्यक्ति ने कहा। "बुनाई कताई की तरह कोई यान्त्रिक काम नहीं है। इसके लिए सोचना पड़ता है और यन्त्र सोच नहीं सकते।"

"शायद तुम ठीक कहते हो।" ऐडमंड कार्टराइट ने टोकते

हुए कहा। वह अब तक इस विवाद को सुनता भर रहा था। "यन्त्र अवश्य नहीं सोच सकते; परन्तु मनुष्य सोच सकते हैं। मनुष्य ऐसे यन्त्र बना सकते हैं, जो उनकी आज्ञा मानें।"

उसके मित्र ने, जो यन्त्रों का विरोधी था, कहा: "मित्र कार्टराइट, यह ठीक है कि तुम एक बहुत अच्छे उपदेशक हो; परन्तु तुम्हें बुनाई के बारे में क्या पता है?"

पादरी ने उत्तर दिया: "कुछ भी नहीं। परन्तु मैं सीख सकता हूं।"

उस दिन से वह नियमपूर्वक जुलाहों की कुटियाओं में जाने लगा। अपनी इन यात्राओं में वह अपने आप बोलता रहता और उत्तेजित होकर तरह-तरह की मुद्राएं प्रदर्शित करता चलता और जो लोग उसे देखते, वे सोचते कि यह भी क्या अजीब पादरी है! और कुछ सोचते कि शायद उसका मस्तिष्क ठीक हालत में नहीं है। परन्तु डाक्टर कार्टराइट वस्तुतः जो कुछ करता था वह उन गतियों का अनुकरण मात्र होता था, जो करघे में ढरकी गुजरने के समय, ताने के खुलते समय और थापी द्वारा बुनाई को ठोकते समय होती हैं। अन्त में वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि बुनाई की प्रक्रिया का कोई भी अंश ऐसा नहीं है, जिसे स्वतः चालित यन्त्र द्वारा न किया जा सके।

यन्त्र विज्ञान के विषय में भी उसका ज्ञान उतना ही कम था, जितना कि बुनाई के बारे में। परन्तु उसने अपने विचारों के अनुसार कागज पर एक रेखाचित्र बना डाला। उसके बाद उसने एक लुहार और एक बढ़ई को यह यन्त्र बनाने का काम सौंपा।

यह यन्त्र बढ़िया नहीं था। यह बहुत ही बेढंगा था और इसे चलाने के लिए दो बलिष्ठ पुरुषों की आवश्यकता होती थी। परन्तु यह यन्त्र कपड़ा अवश्य बुन देता था। उसने इस यन्त्र को पेटेन्ट करा लिया और उसके बाद उसे सुधार कर एक और नया नमूना तैयार करने में जुट गया। तीन वर्ष बाद सन् १७८७ में यह नया नमूना परख के लिए तैयार हो गया। उसने इस दूसरे नमूने को भी पेटेन्ट करा लिया। यह यन्त्र पहले यन्त्र से अच्छा था, परन्तु यह अब भी निर्दोष नहीं था, क्योंकि कुछ देर तक चलाने के बाद इसका नये सिरे से समंजन करना पड़ता था। अन्त में उसने एक तीसरा नमूना बनाया, जो पूर्णतया सन्तोषजनक था।

उसने मैनचेस्टर के एक निर्माता से साझा कर लिया और उसने एक बहुत बड़ा कारखाना बनाया, जिसमें कार्टराइट द्वारा बनाये गये चार सौ यन्त्र लगाये गये थे। ये यन्त्र भाप के इंजिन से चलते थे।

सन् १७९१ में एक रात कुछ जुलाहों की एक भीड़ ने इस कारखाने को और उसके अन्दर लगे करघों को जलाकर राख कर दिया। इस बीच में अन्य नगरों के बेईमान निर्माता उसके पेटेन्ट अधिकारों को तोड़ कर यन्त्र बनाने लगे और उन पर मुकदमा चलाने के लिए उसके पास धन नहीं था। उस पर बहुत सा कर्ज चढ़ गया था और आय कोई थी नहीं।

जब उसकी आयु ६६ वर्ष की थी, तब सरकार ने विज्ञान और उद्योग में उसके योगदान को दृष्टि में रखते हुए उसे लगभग एक लाख तीस हज़ार रुपये प्रदान किये। उसने इस राशि से

कैन्ट में एक फार्म खरीद लिया और अपना शेष जीवन वहीं व्यतीत किया।

## अमेरिका सम्पन्न हो चला

इन नये सूती वस्त्र बनाने के यन्त्रों ने भाप की शक्ति के अधिकाधिक प्रयोग के साथ मिल कर इंग्लैंड की श्रमिक जनता के जीवन को इतना बदल दिया कि जिसकी किसी ने आशा ही न की थी। पहले वे लोग अपने घरों में या छोटे-छोटे कारखानों में मेहनत करते थे। काम करवाने वाले अपना कच्चा माल, जैसे ऊन या रूई ले आते थे और तैयार माल स्वयं ही वहां से ले जाते थे। परन्तु अब यन्त्रों का प्रारम्भ हो जाने पर यह आवश्यक हो गया कि बड़े-बड़े कारखाने बनाये जायें और कामगरों को वहां प्रतिदिन बुलाया जाये। यन्त्रों पर काम करने के लिए बहुत आदमी उपलब्ध थे, इसलिए उनके वेतन न्यूनतम स्तर पर रखे गये, जबकि प्रतिदिन काम करने का समय बहुत ही अधिक था—प्रायः चौदह घंटे से भी अधिक। बच्चे भी कारखानों में काम करते थे, परन्तु बाद में पार्लियामेंट ने एक कानून बना कर इसे निषिद्ध कर दिया।

औद्योगिक कामगरों की इस नई श्रेणी को अपने लिए सस्ते वस्त्रों की और अधिक आवश्यकता थी। सबसे सस्ता वस्त्र रूई से बनता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिणी राज्यों में एक विशेष प्रकार की कपास बोई जाती थी, परन्तु हाथ द्वारा रूई को बिनौले से अलग करने में इतना अधिक परिश्रम पड़ता था कि हब्शी दासों की सहायता लेकर भी उत्पादन को बढ़ा पाने

की कोई आशा नहीं दिखाई पड़ती थी।

जिस व्यक्ति ने इस समस्या का हल निकाला वह मैसाचुसैट्स का निवासी एक युवक स्नातक था—ऐली व्हिटने। जब उसने देखा कि एक दास सारे दिन काम करके भी केवल आधा सेर रूई को बिनौलों से अलग कर पाता है, तो उसने एक सीधा-सादा यन्त्र बनाया—कपास ओटने की चरखी। यह चरखी यान्त्रिक रीति से रूई को बिनौलों से अलग करती जाती थी और इसके कारण न केवल दक्षिणी कैरोलिना में, अपितु सभी दक्षिणी राज्यों में एक अद्भुत परिवर्तन हो गया, जिसका समूचे अमेरिका के विकास पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। कपास उस देश की सम्पत्ति का सबसे बड़ा स्रोत बन गई। सन् १७९२ में जब व्हिटने दक्षिण की ओर गया था, तब अमेरिका में केवल १,४०,००० पौंड रूई प्रतिवर्ष उत्पन्न होती थी। परन्तु सन् १८०० में—चरखी का प्रयोग आरम्भ होने के केवल कुछ ही वर्ष बाद—रूई का उत्पादन बढ़कर ३,५०,००,००० पौंड हो गया। फिर भी अपने इस आविष्कार से व्हिटने धन नहीं कमा पाया, क्योंकि उसे उन खेत-मालिकों से लड़ने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, जिन्होंने उसके आविष्कार की नकल कर ली थी। अनेक निराशाएं सहने के बाद उसने चरखियां बनाना बन्द कर दिया और बड़े पैमाने पर बन्दूकों का निर्माण शुरू किया, जिनकी कि उसके देश को आवश्यकता थी। उसने अलग-अलग पुर्जों को इतना सटीक बनाने की आधुनिक प्रणाली का सूत्रपात किया कि एक बन्दूक—या अन्य कोई भी यन्त्र—

पुर्जों के किसी भी समूह को जोड़कर तैयार की जा सकती थी, जबकि इससे पहले के दिनों में एक ही कारीगर को समूची बन्दूक आदि से अन्त तक स्वयं ही बनानी पड़ती थी।

इस प्रकार यन्त्र-युग, जो बड़े पैमाने पर उत्पादन का युग है, शुरू हो गया।

अध्याय ५

# सड़क पर पहियों का चलन

एक वाहन ऐसा है, जो बिल्कुल आवाज़ नहीं करता। यह अपने से बारह गुना बोझ उठा कर चल सकता है और इसकी चाल दौड़ते हुए आदमी से छहगुनी तक अधिक होती है। फिर भी इसकी चालकशक्ति वही है, जो दौड़ते हुए मनुष्य की होती है। इसे लगभग हर किसी स्थान तक ले जाया जा सकता है और लगभग किसी भी स्थान पर खड़ा किया जा सकता है। इसमें किसी प्रकार का ईंधन खर्च नहीं होता। अनेक देशों और नगरों में यह परिवहन का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। यह एक आधुनिक तकनीकी चमत्कार है। इसका नाम बाइ-सिकल (द्विचक्र) है।

**'काठ के टट्टू' का जन्म**

यह विश्वास करना कठिन है कि कोई समय ऐसा भी था जबकि पिता लोग यह जान कर चिन्तित हुआ करते थे कि उनके पुत्रों में उत्कृष्ट तकनीकी प्रतिभा के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं। फिर भी युवक कार्ल फ्रैडरिख क्रिश्चियन लुडविग, बैरन ड्रेस वान सौएरब्रौन के साथ यही हुआ। उसका पिता अठारहवीं

शताब्दी के अन्तिम दिनों में बेडन में स्थित कार्ल्सरूह में एक राजसभासद था। उस समय यह बात तो सोचने की भी नहीं थी कि किसी सम्भ्रान्त परिवार का कोई युवक इंजीनियरी जैसा कोई गंवारू पेशा अपनायेगा, इसलिए उनके अपनाने को दो ही क्षेत्र बच रहते थे—सेना या सरकारी नौकरी।

बैरन ड्रेस ने इनमें से पिछले को चुना और वह बहुत धीरे-धीरे और बहुत कष्ट अनुभव करते हुए वनपाल के सहायक से शुरू होकर राजगृह प्रबन्धक के पद तक पहुंचने वाली दफ्तर-शाही की सीढ़ी पर चढ़ने लगा। परन्तु एक दिन उसके अन्दर का वैज्ञानिक उसके राजसभासद के आधिकारिक चर्म को भेद कर बाहर आ प्रकट हुआ।



बांई ओर : ड्रेस का काठ का घोड़ा (१८१३) दाईं ओर : पेनी-फार्दिंग १८७४

सन् १८१३ में मैनहीम नगर के निवासियों को एक मज़ेदार दृश्य देखने को मिला। उन्होंने २८ वर्षीय वैरन ड्रेस को नगर की सड़कों पर एक ऐसे विचित्र वाहन पर चढ़ कर दौड़ते हुए देखा कि वैसा वाहन उन्होंने कभी देखा ही नहीं था। यह एक प्रकार की पतलो-सी गाड़ी थी, जिसमें लगभग ३० इंच व्यास के दो पहिये आगे-पीछे इस प्रकार लगे थे कि एक पहिया दूसरे के ठीक पीछे दौड़ता था। ये दोनों पहिये आपस में लकड़ी की एक कड़ी से जुड़े हुए थे। इस कड़ी के ऊपर एक छोटी-सी गद्दी लगी थी, जिस पर वैरन ड्रेस वैठा हुआ था। उसकी बांहें लोहे की दो छड़ों पर टिकी हुई थीं और उसके हाथ एक लकड़ी की छड़ पर जमे थे, जिसके द्वारा वह अगले पहिये को इधर-उधर मोड़ता था।

अपने आपको आगे वढ़ाने के लिए वह बारी-वारी से दायें और वायें पांव से जमीन को पीछे की ओर धकेलता था, वहुत कुछ उसी प्रकार, जिस प्रकार कि स्केटिंग करने वाले करते हैं और ऐसा करने से उसका वाहन डाक घोड़ागाड़ी की अपेक्षा भी तेज़ दौड़ रहा था।

उसने एक ऊंचा धूसर रंग का टोप, वन विभाग के कर्मचारो का हरे रंग का पीछे की ओर दूर तक लटकने वाला कोट और फीतेदार कफों वाली जैबट कमीज़ पहनी हुई थी। उसे देख कर मैनहीम नगर के निवासी खूब ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे, परन्तु वह शहर के बीच में से होता हुआ कार्ल्सरूह की ओर जाने वाली सड़क पर बढ़ता गया। वह कोई चार घंटे में वहां पहुंच भी गया—यह दूरी चालीस मील की थी।

इस प्रकार का वाहन बनाने की प्रेरणा बैरन ड्रेस को किस प्रकार मिली ? उसने अपना विचार इस सही धारणा से शुरू किया कि जब कोई व्यक्ति पैदल चलता है, तो एक पैर से दूसरे पैर पर अपना बोझ डालने में उसे बहुत अधिक ऊर्जा व्यय करनी पड़ती है। उसने अपना उद्देश्य यह रखा कि आगे की ओर गति करते हुए शरीर को एक ही स्थिति में बनाये रखा जाये। उसने यह सिद्ध कर दिखाया कि एक ही लकीर पर चलने वाले वाहन पर जमीन पर पैर बिना टिकाये भी, जब तक वह वाहन गति में हो,—इस वाहन का नाम उसने 'वैलौसीपीड' रखा था—अपना सन्तुलन बनाये रखना व्यक्ति के लिए बिल्कुल आसान काम है।

इसका अनुकरण पारी (पेरिस) और लन्दन में किया गया। ब्वाद बोलोन तथा हाइड पार्क में फैशन-पसन्द युवक लोग अपने 'काठ के टट्टुओं' को—इंग्लैंड में इस सवारी को यही (हौबी हौर्स) नाम दिया गया था—सड़कों पर धकेलते हुए दिखाई पड़ने लगे। लोगों को रातोंरात इस नई सवारी की सनक सवार हो गई। युवराज ने अपने लिए एक विशेष 'काठ का टट्टू' बनवाया और उस पर सवार होकर वह रौटन रो में आनन्द लेने लगा। उसके बाद महिलाओं ने इसे अपनाया। यान्त्रिक युग की उस प्रारम्भिक उपज पर अपने रीजैंसी टोप पहने और लम्बे गाउन फहराती हुई वे कुछ अटपटी अवश्य लगती थीं। लन्दन में 'काठ के टट्टू' पर चढ़ना सिखाने के लिए विद्यालय खुल गये। इन विद्यालयों में शौकीन लड़के और लड़कियां अपना समय गुजारते थे। कोई अचरज नहीं कि

राजधानी के लोगों ने इस सवारी का नाम 'छैला टट्टू' (डैंडी हौर्स) रख दिया। 'वैलौसीपीड' के आविष्कारक के रूप में बैरन ड्रेस को कोई सम्मान नहीं मिला। जब १८५१ में उसका देहान्त हुआ, तब उसका एक पूरा कमरा ऐसा था, जो उसकी निष्फल आविष्कारशील प्रतिभा की कृतियों से भरा हुआ था। इन वस्तुओं में एक कीमा बनाने का यन्त्र था, एक कम ईंधन से जलने वाली अंगीठी थी, एक टंकण यंत्र (टाइपराइटर) था और एक जंग खाया हुआ पुराना 'काठ का टट्टू' था।

उस जर्मन बैरन के बाद एक लीक के सिद्धान्त पर एक आधुनिक वाहन तैयार करने के विचार को एक स्कौटलैंडवासी व्यक्ति ने अपनाया। उसका नाम कर्कपैट्रिक मैकमिलन था। वह डम्फ्रीज़ के निकट कोर्टहिल का रहने वाला एक युवक लुहार था। उसने 'छैले टट्टू' के पिछले पहिये की धुरी में दो क्रैंक (बड़छड़) लगा दिये और उन्हें वह दो लम्बे लीवरों की सहायता से अपने पैरों से चलाने लगा। इस प्रकार वह अपने पैर जमीन पर रखे बिना ही इस वाहन पर सवारी करता रह सकता था। अपने इस नमूने को कई वर्ष तक सुधारते रहने के बाद उसने सन् १८४२ में इस पर चढ़कर डम्फ्रीज़ से ग्लासगो तक की यात्रा दो दिन में पूरी कर ली।

इसके १० वर्ष बाद बावेरिया में स्थित श्वीनफर्ट के एक कारीगर फिलिप हेनरिख फिशर ने इस वाहन के अगले पहिये में पैडल इस प्रकार लगा दिये कि मैकमिलन के लीवरों को चलाने के लिए आवश्यक धक्का देने की गति के स्थान पर अब एक निरन्तर घूमते रहने की गति आ गई।

इस सूझ को एक फ्रांसवासी ने, जिसका नाम अर्नें मिशौ था, तुरन्त अपना लिया और उसने पारी (पेरिस) में साइकिलों का पहला कारखाना खोला। उसी के देशवासी पियरे लालेमा ने यह सोचा कि यदि पैडलों वाले अगले पहिये को पिछले पहिये की अपेक्षा बहुत बड़ा बना दिया जाये, तो 'हाड़हिलाऊ'—इस यन्त्र को यही नाम दिया गया था, जो किसी सीमा तक उचित भी था—की गति को कई गुना बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार 'पैनीफार्दिग' का आविष्कार हुआ, जो शीघ्र ही सारे यूरोप में बहुत लोकप्रिय हो गया।

## जौनी के लिए टायर

साइकिल के आविष्कार के इतिहास में पैनीफार्दिग वाला काल सबसे खतरनाक समय रहा था। अगले पहिये के ऊपर बनी ऊंची गद्दी पर चढ़ने और उससे उतरने के लिए लगभग सर्कस के कलाकार की सी निपुणता की आवश्यकता होती थी।

एक स्विटजरलैंडवासी आविष्कारक हान्स रैनल्ड ने, जो आकर मिडलैंड्स में बस गया था और कौवेन्ट्रीवासी एक इंजीनियर जे० के० स्टारले ने सन् १८८५ के आसपास साइकिल को उसका आधुनिक रूप प्रदान किया। उन्होंने अपने नमूने को 'निरापद साइकिल' नाम दिया। इसमें क्रैंक (बड़छड़) और पैडल अगले और पिछले पहिये के बीच में लगाये गये थे और टांगों की शक्ति एक जंजीर द्वारा पिछले पहिये की ओर प्रेषित की जाती थी। एक अन्य अंग्रेज़ कारीगर लौसन ने पहले-पहल धातु की नालियों का ढांचा तैयार किया, जो सारे संसार में

पुरुषों और महिलाओं के लिए प्रयुक्त होने वाले दो अलग-अलग रूपों में साइकिल का मानक ढांचा बन गया है। एक फ्रांसवासी कारीगर सूवीरे ने पहियों की धुरियों को इस्पात की छोटी-छोटी गोलियों पर टिका दिया, जिसके फलस्वरूप घर्षण न्यूनतम रह गया। इन गोलियों की चूल के कारण मुक्त चक्र (फ्री व्हील) की गति भी सम्भव हो सकी। आर्चर और स्टुर्मी, दो अंग्रेजों ने, जिनमें से पहला इंजीनियर और दूसरा पत्रकार था, साइकिल में गियर लगाने का आविष्कार किया। इन गियरों के फलस्वरूप साइकिल चलाने वाला एक गियर पर समतल मैदान में खूब तेज़ी से साइकिल चला सकता है और दूसरे गियर पर चढ़ाई पर कम परिश्रम द्वारा साइकिल को ले जा सकता है।

इस प्रकार आधुनिक साइकिल अनेक राष्ट्रों के आविष्कारकों के सम्मिलित प्रयत्न का फल थी। फिर भी अभी इसमें कोई ऐसी कमी थी, जिसके कारण यह वैसा लोकप्रिय वाहन नहीं बन पा रही थी, जैसा कि वह आज है। इस कमी को एक स्कौटलैंड-वासी व्यक्ति ने पूरा किया। वह उत्तरी आयर के बैलफास्ट नगर का निवासी था। वह एक शालिहोत्री (पशु चिकित्सक) था और उसका नाम था जौन बौयड डनलप।

सन् १८८७ में एक दिन डनलप के १० वर्षीय पुत्र जौनी ने उससे सहायता मांगी। जौनी ने कहा : "कल हमारे विद्यालय में लड़कों की एक तीन पहियों की साइकिल की दौड़ हो रही है। मैं चाहता हूँ कि किसी तरह मेरी साइकिल बहुत हिचकोले न खाये।" उस समय की अधिकांश साइकिलों और तीन पहियों की साइकिलों की भांति उसकी साइकिल में भी रबड़ का टायर

लगा हुआ था, जिसके कारण उस पर चढ़ने वाले का सारा शरीर भली भांति हिल जाता था। डनलप ने एक रबड़ के नल के दो टुकड़े काट लिये। प्रत्येक टुकड़े को उसने गोल घुमा कर इस प्रकार चिपका दिया कि वे छल्ले की आकृति के बन गये। उसने उन रबड़ के छल्लों में पम्प से हवा भर दी। उसके बाद उसने इन छल्लों को पिछले पहियों पर चढ़ा कर किरमिच की पट्टियों से बांध दिया।

उस दौड़ में जौनी खूब मज़े से जीत गया और बाकी लड़कों से काफी आगे रहा।

उसके बाद डनलप ने इस प्रकार के हवा भरे रबड़ के नल बनाने के लिए साइकिल बनाने वाले एक छोटे से कारखाने से सम्बन्ध जोड़ लिया। फिर उसने उनमें यह सुधार किया कि उसने हवा भरने के लिए तो अन्दर की ओर एक नरम रबड़ की नली का उपयोग किया और बाहर की ओर उस नली को सुरक्षित रखने के लिए मोटे रबड़ के टायर का प्रयोग किया। उस समय सन् १८८८ में सारे संसार में तीन लाख से अधिक साइकिलें नहीं थीं, परन्तु आज इनकी संख्या लगभग साढ़े सात करोड़ है। अकेले ब्रिटेन में ही एक करोड़ बीस लाख साइकिलें हैं। हालैंड और डेनमार्क में हर दो निवासियों के पास एक साइकिल है और साइकिलों का उपयोग रानियां और विद्यालय के छात्र, डाकिये और पर्यटक, सब समान रूप से करते हैं—यह सबसे अधिक प्रजातन्त्रीय वाहन है।

## बिना घोड़ों की गाड़ी

जब मैनहीम की सड़कों पर बैरन ड्रेस अपना धूसर ऊंचा टोप पहने और अपने हरे रंग के लम्बे कोट को फरफराता हुआ पहली बार अपनी साइकिल पर चढ़ कर निकला था, उसके लगभग तीन चौथाई शताब्दी बाद उसी शहर में परिवहन के एक अन्य साधन का आविष्कार हुआ। सन् १८८६ में एक दिन मैनहीम की सड़कों पर पहली बिना घोड़ों की गाड़ी दिखाई पड़ी। यह देखने में एक भद्दी सी तीन पहिये की साइकिल जैसी थी। इसका आविष्कार कार्ल बैन्ज़ ने किया था और वही उसे चला भी रहा था। कार्ल बैन्ज़ वहीं का रहने वाला एक इंजीनियर था। बेचारे बैरन ड्रेस की भांति उसे भी अपने इस शोर मचाने और बदबू छोड़ने वाले आविष्कार के लिए उपहास और तिरस्कार के सिवाय कुछ न मिला।

परन्तु बैरन ड्रेस से कार्ल बैन्ज़ में यह अन्तर था कि वह सुप्रशिक्षित और अनुभवी तकनीकी आदमी था। वह कार्ल्सरूह के रहने वाले एक इंजिन-चालक का पुत्र था और एक छोटे से कारखाने का मालिक था, जो गैसचालित मोटरें या अन्तर्दहन इंजिन बनाता था। यह एक नये प्रकार का गति देते वाला यन्त्र था, जिसे पूर्णता तक पहुंचाने में उसने भी योग दिया था। यह उसी की सूझ थी कि इस प्रकार के इंजिन को किसी गाड़ी में लगाया जाये।

उसकी मोटर जिस सिद्धान्त के आधार पर बनी थी, उसकी खोज १० वर्ष पहले कोलोन के निवासी एक जर्मन इंजीनियर डा० निकोलौस ओटो ने की थी। ओटो ने चार धक्के

वाले चक्र का सुझाव दिया था, जिसका प्रयोग ग्राजकल की मोटरगाड़ियों में भी किया जाता है। पहला धक्का गैस ग्रौर वायु के मिश्रण को, जो कार्बुरेटर द्वारा तैयार किया जाता है, सिलिंडर के अन्दर खींचता है; वापसी धक्के में पिस्टन उस मिश्रण को दबाता है; उसके बाद उसमें चिनगारी द्वारा ज्वलन उत्पन्न होता है ग्रौर उससे विस्फोट होता है, जिससे गैस फैलती है ग्रौर पिस्टन को सिलिंडर में नीचे की ग्रोर धकेल देती है—यह धक्का ही 'कार्यकारी धक्का' होता है; चौथा धक्का बेकार गैसों को बाहर निकाल देता है। इसके बाद सारा चक्र फिर नये सिरे से शुरू होता है। हालांकि चार धक्कों में से केवल एक धक्का ही वास्तविक काम करता है, फिर भी फ्लाई व्हील की गति के कारण यह सुनिश्चित रहता है कि पिस्टन नियमित रूप से गति करता रहे।

मैनहीम नगर से कुछ ही दूर पर कैन्स्टाट नामक एक ग्रौर नगर है। वहां के रहने वाले एक इंजीनियर ने, जिसका नाम गोटालियेब डैमलर था, सन् १८८५ में पहली मोटर साइकिल बनाई थी। पचास वर्षीय डैमलर कुछ वर्षों तक डाक्टर ग्रोटो के गैस मोटर बनाने के कारखाने में काम कर चुका था ग्रौर उसने सन् १८८३ में पैट्रोल से चलने वाले एक वाहन को पेटेन्ट करवा लिया था। उसकी मोटर साइकिल एक परीक्षणात्मक मशीन थी, परन्तु उसका ख्याल था कि इस प्रकार का वाहन देहातों में जाने वाले डाकियों के लिए बहुत उपयोगी रहेगा।

डैमलर ग्रौर बैन्ज़, दोनों यात्रियों के लिए गाड़ियां बनाने लगे। डैमलर वह पहला व्यक्ति था, जिसने ग्रपनी गाड़ियों में

चार वेग वाले गियर और भिन्नक गियर लगाये, जिसके कारण पिछले दो पहिये किसी मोड़ पर मुड़ते समय अलग-अलग वेग से घूम सकते हैं।

शुरू-शुरू में इस नये वाहन में जनता की रुचि बहुत नहीं थी। परन्तु उन्हीं दिनों एक ऐसी घटना हुई, जो कई अखबारों में छपी। एक मनोहर दिन कार्ल बैन्ज़ किसी यात्रा पर गया था, और ज्योंही वह घर से निकला, उसके दो लड़कों ने, जिनकी आयु १३ और १५ वर्ष थी, मोटरगाड़ी को 'मांग लिया' और उसे चला कर फार्ज़हीम तक ले गये और वापस लौट आये। यह कुल मिला कर १२० मील का रास्ता था। मोटरगाड़ी में की गई पहली वास्तविक आनन्द-यात्रा यही थी। लौट आने पर कई घंटे चिन्ता में बिताने के बाद उन लड़कों पर जो बीता, वह कुछ मज़े की चीज़ नहीं थी, क्योंकि बैन्ज़ महोदय ने उनकी अच्छी तरह धड़न्त की। परन्तु मन ही मन वह बहुत प्रसन्न भी हुआ। उसकी मोटरगाड़ी इतनी भरोसे की और इतनी व्यवहार्य सिद्ध हुई थी कि उसे चलाना शब्दशः 'बच्चों का खेल' था।

**लाल झंडी का कानून**

मोटरगाड़ी के पीछे दीवाना होने वाला पहला देश फ्रांस था—और वह आज तक भी वैसा ही है। बैन्ज़ ने पारी (पेरिस) नगर को पहले-पहल किराये पर चलने वाली मोटर-गाड़ियों का संभरण किया। शीघ्र ही मोटर-गाड़ियों के चालकों और गाड़ीवानों में ज़ोरदार लड़ाइयां होने लगीं, क्योंकि

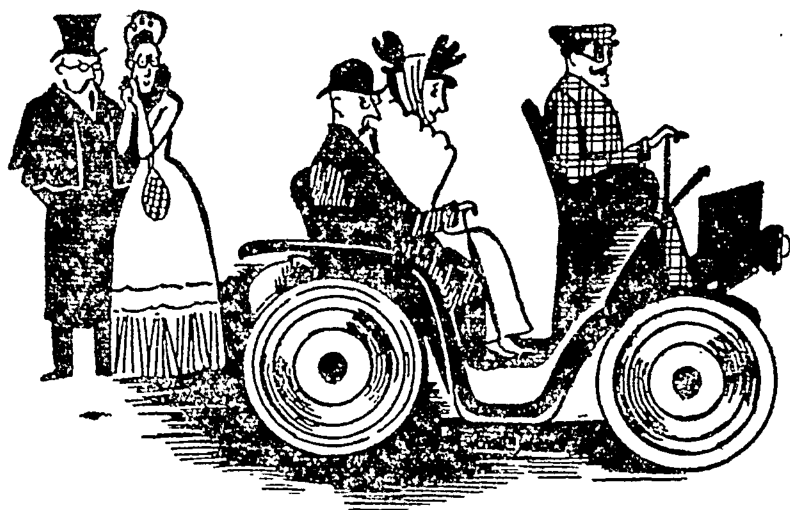
गाड़ीवानों को यह डर लगा कि इस नये आविष्कार से उनके व्यवसाय को धक्का पहुंचेगा। फ्रांस में ही पहले-पहल मोटरों की दौड़ें भी हुईं। ये दौड़ें बहुत खतरनाक होती थीं, क्योंकि इनमें भाग लेने वाले अधिकांश व्यक्ति अपनी नई बनाई हुई गाड़ियों की परख इन दौड़ों में ही करते थे।

केवल ब्रिटेन परिवहन के इस नये साधन के विकास से अछूता रहा। इसका कारण वहां का 'लाल झंडी कानून' था, जो इस बात पर ज़ोर देता था कि ऐसा कोई भी वाहन, जिसमें घोड़े न जुते हों, खुली सड़क पर चार मील प्रति घंटे और मकानों वाले इलाके में दो मील प्रति घंटे से तेज़ न चले और 'सड़क पर चलने वाले ऐसे इंजिन' के आगे एक व्यक्ति लाल झंडी लेकर चले और लोगों को सावधान करता रहे कि पीछे ऐसा इंजिन आ रहा है। यह कानून किसी भी स्वतः चालित गाड़ी के लिए मृत्युदंड के समान था।

परन्तु इस प्रतिबन्धक कानून के विरुद्ध खिलाड़ियों, इंजीनियरों और पार्लियामेंट के सदस्यों में एक ज़ोरदार आन्दोलन उठ खड़ा हुआ और इस कानून को हटवाने के लिए एक मोटर-कार गोष्ठी (क्लब) बनाई गई। अन्त में नवम्बर १८९६ में इस सम्बन्ध में सफलता मिली, परन्तु इस समय तक इस प्रतिबन्ध को लगे हुए लगभग ६० वर्ष हो चुके थे। अब अधिकतम गति की सीमा बढ़ा कर १४ मील प्रति घंटे कर दी गई।

मोटरगाड़ी को लोकप्रिय वाहन बनाने के लिए अन्य किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा हैनरी फोर्ड ने कहीं अधिक काम किया। यद्यपि वह कोई आविष्कारक नहीं था और न इंजिन

की रूपरेखा बनाने के सम्बन्ध में ही उसने कोई महत्वपूर्ण योग दिया, फिर भी इस तरुण अमेरिकन इंजीनियर ने मोटरगाड़ी को दैनिक उपयोगिता का वाहन बना दिया, जबकि सन् १९०० के आसपास मोटरगाड़ी केवल धनी लोगों का एक



सन् १९०० के आसपास की एक प्रारम्भिक मोटरगाड़ी

खिलौना और उत्साही लोगों का एक मनोरंजन मात्र थी। उसने इस प्रकार की मोटरगाड़ी बनाने का निश्चय किया, जो उसके विशाल देश की सब बड़ी और छोटी सड़कों पर चलने की कठिनाई और घिसाई को सहन कर सके। उसने यह भी यत्न किया कि मोटरगाड़ियों का उत्पादन यान्त्रिक ढंग से और बहुत बड़े पैमाने पर किया जाये, जिसमें मोटरें बहुत बड़ी संख्या में तैयार हो सकें और उनकी लागत घट कर न्यूनतम रह जाये। वह अपने कर्मचारी वर्ग का वेतन भी इसलिए

बढ़ाना चाहता था कि जिससे वे भी उसकी मोटरों के ग्राहक बन सकें। इस विषय में कोई सन्देह नहीं है कि उसके बाद आने वाली चार दशाब्दियों में हैनरी फोर्ड को आश्चर्यजनक सफलता मिली।

परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि यदि ऐली ह्विटने ने बदले जा सकने वाले उपांगों (अंशों) की प्रणाली का जिसका कि उल्लेख हम पिछले अध्याय में कर आये हैं, आविष्कार न किया होता, तो फोर्ड की बड़े पैमाने पर उत्पादन करने की पद्धति सम्भव ही न होती।

मोटरगाड़ी जो सन् १६०० के आसपास पहले अपरिष्कृत, धीमा, शोर मचाने वाला, बदबू छोड़ने वाला और बेढंगा सा यन्त्र था, दो पीढ़ियों के अन्दर ही आज की शानदार, तीव्रगामी, मन्द ध्वनि करने वाली, अवातरोधी मोटरगाड़ी बन गई है, जिसमें उसके सब पहिये अलग-अलग लगे होते हैं। उसमें गियर अपने आप बदलते रहते हैं। उसमें स्टियरिंग शक्ति की सहायता से होता है और उसमें वातानुकूलन इत्यादि की अन्य सुविधाएं होती हैं, जिन्हें आज भले ही विलास की वस्तु कहा जा सके, परन्तु कुछ ही वर्षों में वे बिल्कुल सामान्य वस्तुएं बन जायेंगी। आखिर जब सन् १६१२ में स्वयं स्टार्टर (सैल्फ स्टार्टर) का आविष्कार हुआ था, जिसके फलस्वरूप हाथ से हैंडल घुमाने का कमरतोड़ काम बिल्कुल अनावश्यक बन गया था, तब वह भी एक फ़िज़ूलखर्ची और विलास की वस्तु समझा गया था। परन्तु उस आविष्कार का अर्थ यह था कि अब 'अबलाएं' भी मोटरगाड़ी चला सकती हैं और आज तो सस्ती से सस्ती

मोटरगाड़ियों में भी यह एक अनिवार्य वस्तु बन गया है।

## रूडोल्फ डीज़ल का विचित्र अन्त

जिस बालक के माता-पिता जर्मन हों और जिसका पालन-पोषण पारी (पेरिस) में और सन् १८७० में फ्रांस-प्रशिया युद्ध छिड़ जाने के बाद इंग्लैंड में हुआ हो और जिसे केवल १२ वर्ष की आयु में विद्यालय में शिक्षा पाने के लिए इतनी दूर बावेरिया भेजा गया हो, उसका दृष्टिकोण युवा हो जाने पर अन्तरराष्ट्रीय हुए बिना नहीं रह सकता था। वह एक ऐसे जगत् का व्यक्ति था, जो अपनी मातृभूमि की सीमाओं के पार भी वस्तुओं को देख सकता था।

रूडोल्फ डीज़ल की पृष्ठभूमि ऐसी ही थी। म्यूनिख़ में अपना अध्ययन समाप्त करने के बाद उसने स्विटजरलैंड में एक इंजीनियर के रूप में काम करना शुरू कर दिया। परन्तु उसने अपना भविष्य भाग्य के भरोसे नहीं छोड़ दिया था। जब म्यूनिख़ पोलीटैकनिक में उसके प्राध्यापक ने उस समय विद्यमान भाप के इंजिनों और मोटरों की ईंधन को ऊर्जा में परिवर्तित करने की बहुत अल्प कार्यक्षमता के सम्बन्ध में भाषण दिया था, तब से ही वह एक विचार के पीछे पड़ा था। उस भाषण के बाद उसने अपनी कापी के हाशिये में एक छोटी सी टिप्पणी लिखी थी। वे केवल थोड़े से शब्द थे, जिनके द्वारा वह यह याद रख सके कि उसे ऊष्मा से और भी अधिक ऊर्जा प्राप्त करने की समस्या का समाधान करना है। वह टिप्पणी उसके अध्ययन और शिक्षुता के अनेक वर्षों में एक विशाल

प्रश्नचिह्न सी बन कर खड़ी रही ।

उसका उत्तर ढूंढने में उसे चौदह साल लगे। सन् १८९३ में उसने एक मितव्ययी अन्तर्दहन इंजिन को पेटेन्ट कराया और अपने आविष्कार के सम्बन्ध में एक पतली सी पुस्तिका प्रकाशित की---यद्यपि उसने इस आविष्कार को अभी केवल कागज़ पर ही रूपरेखा के रूप में तैयार किया था। परन्तु उस पुस्तिका के आधार पर जर्मनी की बड़ी-बड़ी इंजीनियरिंग की व्यवसाय संस्थाओं ने, जिनमें कि कुप का कारखाना भी एक था, उसे वह इंजिन बनाने के लिए सुविधाएं प्रदान कीं और चार वर्ष तक काम करने के बाद वह इंजिन उसकी औग्सवर्ग प्रयोगशाला के परख मंच पर बन कर तैयार हुआ---यह पहला डीज़ल इंजिन था।

इस यन्त्र का आधारभूत नया विचार यह था कि यद्यपि यह इंजिन पैट्रोल के इंजिन की भांति काम करता था, फिर भी इसमें भारी तेल अर्थात् कच्चे अपरिष्कृत मिट्टी के तेल का उपयोग किया जा सकता था, जो सामान्यतया पैट्रोलचालित इंजिनों में प्रयुक्त होने वाले परिष्कृत और महंगे पैट्रोल की तुलना में कहीं सस्ता पड़ता है। डीज़ल इंजिन में चिनगारी उत्पन्न करने के उपकरण के बिना ही काम चल जाता है, जिसके कारण इसका परिचालन कहीं सरल होता है और इसके निर्माण की लागत बहुत कम रह जाती है। पिस्टन वायु को सिलिंडर में खींचता है और उसे ३५ वायुमंडलीय दबावों के बराबर दबाता है, जिससे वह वायु ५०० डिग्री शतांश तक गर्म हो जाती है। इस गर्म और दबी हुई वायु में तरल ईंधन की थोड़ी सी मात्रा

पहुंचाई जाती है और ऊष्मा के कारण उस ईंधन में एकदम विस्फोट होता है। इससे पिस्टन सिलिंडर में नीचे की ओर धकेल दिया जाता है, परन्तु 'कार्यकारी धक्के' के समय में ही और तेल सिलिंडर में पहुंच जाता है, जिससे निरन्तर विस्फोट होता रहता है और सिलिंडर में तब तक दबाव बढ़ता जाता है, जब तक कि पिस्टन सिलिंडर की तली तक न पहुंच जाये। चौथा धक्का, जैसा कि पैट्रोल इंजिन में होता है, फालतू गैसों को बाहर निकाल देता है। इसका परिणाम यह होता है कि इस इंजिन में उत्पन्न होने वाली ऊष्मा का ३५ प्रतिशत से भी अधिक अंश ऊर्जा में रूपान्तरित हो जाता है, जबकि पैट्रोल इंजिन में इस प्रकार की ऊष्मा का केवल २८ प्रतिशत और भापचालित इंजिन में केवल १२ प्रतिशत अंश ही ऊर्जा में बदल पाता है।

डीज़ल इंजिन का सभी जगह बड़े उत्साह से अभिनन्दन किया गया और कुछ ही समय में इसे अनेक प्रकार से प्रयोजनों के लिए अपना लिया गया : एक जगह खड़े हुए 'मूल गतिदाता' के रूप में, रेलगाड़ियों में, जलपोतों में, मोटर-लारियों में, बसों में, पनडुब्बियों में और बड़े विमानों में इसे लगाया गया। डीज़ल ने एक विश्वव्यापी कम्पनी स्थापित की, जिसका प्रधान केन्द्र म्यूनिख़ में था और बड़ी-बड़ी धनराशियां उसकी जेब में पहुंचने लगीं। ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह उन थोड़े से आविष्कारकों में से एक है, जो अपने काम का पूरा लाभ प्राप्त कर सके हैं।

इसलिए तब बहुत तहलका मचा, जब सितम्बर १९१३

की एक रात में यह अविश्वसनीय समाचार मिला कि रूडोल्फ डीज़ल इंग्लैंड जाते हुए इंग्लिश चैनल को पार करने वाले एक जहाज़ में से गायब हो गया है।

पहले तो कई अजीबोगरीब अफवाहें फैलीं, परन्तु उसके बाद सचाई का पता चल गया।

उसकी आर्थिक स्थिति बहुत निराशाजनक हो गयी थी। जितनी उसकी हैसियत थी, उससे कहीं अधिक धन उसने खर्च कर दिया था। पेटेन्टों के झगड़ों में उसका धन बहुत व्यय हो गया था और उसने अनेक प्रकार का सट्टा शुरू कर दिया था।

वह बहुत कच्चा व्यवसायी सिद्ध हुआ। अन्य कोई व्यक्ति उसकी जगह होता, तो वह इस आर्थिक दुविधा में से निकलने का रास्ता आसानी से ढूंढ लेता। परन्तु उसे केवल अपने काम-काज का अन्त और दिवालियों को मिलने वाली बदनामी ही सामने दिखाई पड़ी। इसलिए उसे वह कदम उठाने का निश्चय करना पड़ा, जो उसे अपनी इन समस्याओं का एकमात्र समाधान दिखाई पड़ता था।

उसकी लाश समुद्र में पाई गई। उसके दो पुत्रों ने उसकी जेबों में मिली चीजों को पहचाना। इन वस्तुओं में एक दैनिकी थी। उसमें उसने सितम्बर १९१३ के उस दुर्भाग्यपूर्ण दिवस पर पेंसिल से एक छोटा-सा काटे का निशान बना दिया था।

रूडोल्फ डीज़ल भले ही संसार से चला गया, परन्तु डीज़ल इंजिन बना रहा। इसका प्रयोग विद्युत् से चलने वाली उन रेलगाड़ियों को चलाने के लिए किया जाता है, जो स्थावर

बिजली घरों से विद्युत् नहीं लेतीं, अपितु अपने इंजिन में ही अपने लिए विद्युत् की धारा उत्पन्न करती हैं। सन् १९५० के बाद से इसे मामूली मोटरगाड़ियों और विशेष रूप से किराये पर चलने वाली मोटरगाड़ियों में लगाया जाने लगा है। इस प्रकार सन् १८९७ में जब उसके आविष्कारक ने अपना पहला बड़ा नमूना बनाया था, उसके ६० वर्ष बाद भी डीज़ल इंजिन परिवहन के नये-नये क्षेत्रों में विजय प्राप्त करता जा रहा है।

परन्तु कुल मिला कर अन्तर्दहन इंजिन, जिसमें कि सिलिंडर और पिस्टन का प्रयोग किया जाता है, मूलतः वही चला आ रहा है, जैसा कि निकोलौस ओटो ने पहले-पहल उसे अपने सिद्धान्त में प्रतिपादित किया था। व्यावहारिक उपयोग की दृष्टि से वस्तुतः क्रान्तिकारी महत्व का अभिकल्प केवल 'रोटरी पिस्टन' इंजिन है जिसका आविष्कार दक्षिणी जर्मनी के निवासी एक इंजीनियर फैलिक्स वैंकल ने किया था। यह अभी भी विकास की अवस्था में है, परन्तु हो सकता है कि कुछ ही वर्षों में हम इस इंजिन से मोटरगाड़ियों और विमानों को चलते देख सकें।

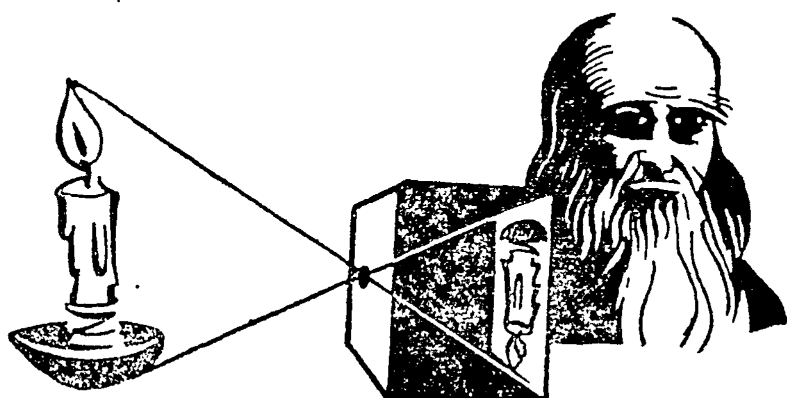
वैंकल के इंजिन में सिलिंडर एक अंडाकार डिब्बा सा होता है, जिसके अन्दर 'पिस्टन'—एक त्रिकोणाकृति घूमती हुई चकत्ती—गोल घूमता है। उसे एक चक्कर पूरा घुमाने के लिए तीन विस्फोट होते हैं। जब वह चकत्ती घूमती है, तब पैट्रोल की गैस का अन्दर खींचा जाना, उसका दबाया जाना और ज्वलन (चिनगारी देने वाले प्लग द्वारा), शक्ति उत्पन्न करने वाला धक्का और फालतू गैसों को बाहर निकालना, ये सब

काम एक के बाद एक तेज़ी से होते जाते हैं। वस्तुतः यह इंजिन केवल एक पिस्टन द्वारा (जिसे रौटर कहा जाता है) तीन सिलिंडरों वाले यन्त्र का काम करता है और इस प्रकार यह उतने ही भार और आकार वाले परम्परागत इंजिन की अपेक्षा कहीं अधिक ऊर्जा उत्पन्न करता है। इसमें घटिया किस्म के ईंधन का भी प्रयोग किया जा सकता है। इसमें वाल्व स्टियरिंग के जटिल कल-पुर्जों की भी आवश्यकता नहीं होती और इसमें पिस्टन को ऊपर-नीचे चलाने और उसके बाद उसकी ऊर्जा को पहियों को घुमाने वाली छड़ तक ले जाने में भी ऊर्जा का अपव्यय नहीं होता।

परन्तु शायद हम किसी दिन एक बिल्कुल अलग प्रकार के 'मुख्य संचालक' (प्राइम मूवर) तथाकथित ईंधन सैल का प्रयोग होते देख पायेंगे। पहले-पहल इसका प्रदर्शन सन् १९५९ में कैम्ब्रिज के एक वैज्ञानिक फ्रांसिस टी० बेकन ने किया था। और यह 'विद्युत् विच्छेदन के विलोम' के द्वारा कार्य करती है—अर्थात् इसमें हाइड्रोजन और आक्सीजन को आपस में मिला कर विद्युत् की धारा उत्पन्न की जाती है। इस ईंधन सैल का उपयोग पृथ्वी के कृत्रिम उपग्रहों में विद्युत् धारा उत्पन्न करने के लिए किया भी जा चुका है और शायद किसी दिन यह परिवहन के क्षेत्र में एक पूरी क्रान्ति उत्पन्न कर देगी।

अध्याय ६

# सिनेमा चित्र



लियोनार्दो का धूमिल कैमरा (कैमरा ग्रोब्सक्योरा)

जादू की लालटेन का आविष्कार एक जर्मन पादरी अनास्टेसियस किरखर ने सत्रहवीं शताब्दी में किया था, परन्तु इसका घरों और भाषणशालाओं में आमतौर पर प्रयोग विक्टोरिया के काल में आकर शुरू हुआ।

आजकल के सर्वाधिक लोकप्रिय मनोरंजन, अर्थात् चलचित्र को बनाने में जिन तीन तत्वों को मिलाना पड़ा, उनमें से पहला यह जादू की लालटेन ही था।

## पुरानी अलमारी का रहस्य

दूसरा तत्व था--जो कुछ हमें दिखाई पड़ता है, उसका यान्त्रिक और रासायनिक अभिलेखन। इटली के प्रतिभाशाली कलाकार लियोनार्दो दा विन्ची ने जिन अनेक वस्तुओं का आविष्कार किया था, उनमें से एक 'धूमिल कैमरा' भी था। यह एक सन्दूक था, जिसमें एक ओर एक छोटा-सा छेद होता था, जिसमें से प्रकाश की किरणें अन्दर पहुंचती थीं और सामने की दीवार पर सन्दूक के बाहर विद्यमान वस्तुओं का एक ऐसा चित्र बना देती थीं, जिसमें ऊपर का भाग नीचे और नीचे का भाग ऊपर दिखाई पड़ता था। लियोनार्दो सन् १५०० के आस-पास हुआ था और उस समय किसी ऐसी वस्तु के आविष्कार की कोई सम्भावना नहीं थी, जो उस अन्धकारपूर्ण सन्दूक की दीवार पर पड़ने वाले चित्रों को स्थायी रूप से परिरक्षित कर सके। आज जिस अर्थ में 'रसायन' शब्द का प्रयोग होता है, उस वस्तु का उन दिनों अस्तित्व ही नहीं था और कीमियागर लोग मुख्य रूप से स्पर्शमणि (पारस पत्थर) को ढूंढने और सोना बनाने की कोशिश में लगे रहते थे।

इसके तीन सौ वर्ष बाद एक सेवानिवृत्त फ्रांसीसी अफसर नाइसेफोर नियेप्से ने, जिसने नैपोलियन के अधीन रह कर अनेक लड़ाइयां लड़ी थीं, उन रासायनिक पदार्थों पर परीक्षण करने शुरू किये, जिन पर सूर्य की किरणों का प्रभाव पड़ सकता है। उसने लियोनार्दो के धूमिल कैमरे से अपना काम शुरू किया। उसने सामने वाले छोटे-से छेद के स्थान पर एक लैन्स लगा दिया, जिससे वह किसी भी वस्तु को ठीक फोकस में

लाकर उसका और अधिक स्पष्ट चित्र पा सके।

उसके बाद उसने उन संवेदनशील पदार्थों की खोज शुरू की, जिन पर प्रकाश की किरणों का स्थायी प्रभाव पड़ सकता है। यह कोई बहुत अजीबोगरीब सूझ नहीं थी; आखिरकार सूर्य की किरणें हमारी त्वचा का रंग बदल देती हैं; वे कपड़ों का रंग उड़ा देती हैं और फूलों में तरह-तरह के सुन्दर रंग भरने में सहायक होती हैं। अनेक परीक्षण करने के पश्चात् उसे यह भरोसा हो गया कि वह जिस वस्तु की खोज कर रहा था, वह अस्फाल्ट है: कारण यह है कि यदि अस्फाल्ट के टुकड़े के किसी हिस्से पर सूर्य का प्रकाश काफी समय तक पड़ने दिया जाये, तो उसका वह हिस्सा वानस्पतिक तेलों में अविलेय हो जाता है, अर्थात् उनमें घुलता नहीं। यह बहुत लम्बा काम था और कई दिन तक अस्फाल्ट की पट्टी को नियेप्से के कैमरे में रख कर लैन्स को अनावृत रखने के बाद उस पट्टी पर चित्र की कुछ बाह्य रेखाएं सी उभर पाती थीं।

इस बीच में एक अंग्रेज़ रसायन शास्त्री थामस वैजवुड भी, जो सुन्दर चीनी मिट्टी के बर्तनों के विख्यात निर्माता जोसिया का पुत्र था, इसी दिशा में काम कर रहा था। उसने लन्दन में रायल इंस्टीट्यूशन के हम्फ्री डेवी के साथ मिल कर सिल्वर नाइट्रेट में भिगोये हुए कागज़ों पर छायाचित्र तैयार किये। जब वह इस प्रकार के कागज़ पर किसी पौधे की पत्तियां रख देता था, तो जो हिस्सा पत्ती से ढका नहीं रहता था, वह सूर्य का प्रकाश पड़ने पर काला हो जाता था, जबकि वह हिस्सा जो पत्तियों के नीचे ढका रहा था, सफेद रह जाता था।

लगभग बीस वर्ष तक इस दिशा में काम करने के बाद संयोग से नियेप्से की भेंट एक और व्यक्ति से हुई, जिसका मस्तिष्क भी उसी समस्या में व्यस्त था। उसका नाम था लुई जैकी मान्दे दागुऐर। वह मकानों की सजावट का काम करता था और डायोरामा (पारचित्र) दिखाने का भी काम करता था। उसने इस बात का पता चलाया कि अस्फाल्ट की अपेक्षा सिल्वर नाइट्रेट प्रकाश के प्रति कहीं अधिक संवेदनशील है। दूसरी ओर नियेप्से ने एक बढ़िया कैमरा बनाया था। यह एक चौकोर सन्दूक था, जो ६ इंच लम्बा था। इसमें एक नली



प्रारम्भिक दिनों का छवि-अंकन

में एक लैन्स इस तरह लगाया गया था, कि जिसे फोकस करने के लिए आगे-पीछे हटाया जा सकता था। परन्तु अब नियेसे

वहुत बूढ़ा हो गया था और इससे पहले कि ये दोनों आविष्कारक कुछ धुंधले और छाया जैसे चित्रों से बढ़कर कुछ चित्र वना पाते, ८६ वर्ष की आयु में उसका देहान्त हो गया।

दागुऐर अपने काम में जुटा रहा। चार वर्ष और बीत गये। उसके वाद सन् १८३७ के पतझर में दैवयोग ने उसकी लगन का प्रतिफल दिलाने में सहायता की।

उसने कुछ विगड़ गई प्लेटों को, जिन्हें कि वह समझता था कि उसने काफी देर तक लैन्स के सामने अनावृत नहीं रखा है, एक अल्मारी में रख छोड़ा था। उसका विचार था कि वह उन्हें धोकर उनका फिर प्रयोग कर लेगा। कुछ सप्ताह वाद उसने उन्हें वाहर निकाला और जो कुछ उसने देखा, उसके कारण उसे अपनी आंखों पर विश्वास ही होना कठिन हो गया। उन प्लेटों पर सुन्दर स्पष्ट चित्र बने हुए थे, जो उसकी अपेक्षा कहीं अधिक सजीव थे, जितनी कि उसने अपने चित्रों के होने की कभी कल्पना भी न की थी।

दागुऐर पर एक ऐसा भूत-सा सवार हो गया, जैसा कि केवल आविष्कारकों पर ही हो सकता है। उसने एक वृहद्दर्शक कांच से उस अलमारी का हर कोना भली भांति देख-देख कर छान मारा। वह अलमारी बिल्कुल खाली जान पड़ती थी, परन्तु वह वस्तुतः बिल्कुल खाली थी नहीं। अन्त में उसने पता चला लिया कि अलमारी के सबसे निचले खाने में पतली-पतली दरारों में पारे की बहुत छोटी-छोटी चमकीली गोलियां पड़ी हुई थीं। पहले कभी पारे की एक बोतल वहां टूट गई थी। उसी पारे का यह वचा हुआ अंश था।

**दागुऐर के ढंग से चित्र बनवाने की सनक**

तो समस्या का समाधान यही था। सिल्वर नाइट्रेट की प्लेटें पारे की भाप से 'डैवलप' (व्यक्त) हो गई थीं। उसने अपने इस सिद्धान्त की परख की। उसने एक प्लेट को कैमरे में रख कर अनावृत किया और उसे एक अंधेरे कमरे में एक प्याले के ऊपर रखा, जिसमें कि गर्म पारा भरा हुआ था। ऐसा लगा कि मानों जादू से चित्र प्लेट के ऊपर प्रकट हो गये। उसने प्लेट पर लगे हुए चांदी के कणों को सोडियम सल्फेट के घोल में रख कर उन्हें घुल जाने दिया और इस प्रकार चित्र को स्थिर कर दिया। इस प्रकार फोटोग्राफी की सबसे पहली प्रक्रिया, जिसे दागुऐर फोटोग्राफी कहा जा सकता है, तैयार हुई।

इस फोटोग्राफी को जो सफलता मिली, वह आशातीत थी। सारा पारी (पेरिस) दागुऐर की विधि से फोटो खिंचवाने के लिए अधीर हो उठा। घंटे भर तक तेज धूप में बैठना और उसके बाद एक छोटे-से कागज़ पर एक धुंधला-सा अपना काला चित्र लेकर घर लौटना, यह उस समय की सबसे नई सनक थी। चित्रकारों को यह डर लगा कि कहीं इस नये प्रतिद्वन्द्वी के मुकाबले में उनकी जीविका ही न जाती रहे, इसलिए उन्होंने तुरन्त दागुऐर से कैमरे खरीदने शुरू किये और लोगों के चित्र बनाना बन्द करके उन्होंने दागुऐर की विधि से उनके फोटो बनाने शुरू कर दिये। यही कारण है कि उस काल की अनेक प्रारम्भिक फोटो-छवियों में इतनी बढ़िया कलापूर्ण रुचि दिखाई पड़ती है।

जब १८५१ में दागुऐर का देहान्त हुआ, उस समय एक

और नई फोटोग्राफी की प्रणाली दागुऐर की विधि पर हावी हो चली थी। दागुऐर की विधि में चित्र की केवल एक ही प्रति बनती थी और उससे न तो अनेक प्रतियां बनाई जा सकती थीं और न उसको बड़ा बनाया जा सकता था।

फौक्स टाल्बोट नामक एक अंग्रेज़ की यह सूझ थी कि फोटोग्राफी की प्रक्रिया को दो भागों में बांट दिया जाये, जिसमें पहले प्रतिलोम छवि तैयार की जाये और उसके बाद उन प्रतिलोम छवियों से अनुलोम छवियां बनाई जायें। उसने प्रतिलोम और अनुलोम दोनों प्रकार की छवियों के लिए कागज का ही प्रयोग किया। उसके कुछ 'कैलोटाइप' चित्र (उसने अपनी छवियों का यही नाम रखा था) कलात्मक दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर हैं।

उसके बाद नियेप्से द सें विक्तोर इस क्षेत्र में आया। यह उस व्यक्ति का भतीजा था, जिसने दागुऐर के साथ काम किया था। इसने सन् १८४७ में प्रतिलोम छवियों के लिए कांच की प्लेटों का प्रयोग शुरू किया। परन्तु इन प्लेटों पर एक गीले घोल का लेप रहता था और इसलिए इनको संभालना ज़रा कठिन था। फिर भी योरोप और अमेरिका में छविकार अनेक वर्षों तक उनका खूब प्रयोग करते रहे और कुछ बहुत ही रोचक ऐतिहासिक अभिलेख इस प्रकार की प्लेटों द्वारा तैयार किये गये, हालांकि उन दिनों छविकारों को अपने साथ बहुत अधिक उपकरण लेकर चलना पड़ता था। इन उपकरणों में एक तम्बू भी होता था, जिसके अन्दर घुस कर इन गीली प्लेटों को तुरन्त डैवलप किया जा सके।

सूक्ष्म छवि अंकन का आविष्कार कुछ मेधावी फ्रांसीसियों ने सन् १८७१ में पारी (पेरिस) के घेरे के दिनों में गुप्त रूप से सन्देश भेजने के लिए किया था। वे लिखित सन्देशों को फोटोग्राफी के साधनों द्वारा बहुत छोटे आकार में अंकित कर लेते थे और उन्हें पतली कोलोडियन की पतरियों पर छाप लेते थे। इन पतरियों को पालतू कबूतरों के द्वारा वे घिरे हुए शहर से बाहर अनधिकृत फ्रांस में भेज देते थे।

अन्त में सन् १८७० और १८८० के बीच में अंग्रेज़ आविष्कारक मैडौक्स और जोसेफ विल्सन स्वान फोटोग्राफी की प्लेटों के लिए एक सूखा लेप तैयार करने में सफल हो गये और इसके द्वारा फोटोग्राफी की आगे प्रगति में सबसे बड़ी बाधा दूर हो गई।

परन्तु सन् १८८७ में एक बिल्कुल नया विकास प्रारम्भ हुआ। गुडविन और ईस्टमैन नामक दो अमेरिकनों ने यह घोषणा की कि उन्होंने फोटोग्राफी की एक नई सामग्री, सैल्यूलाइड की फिल्म, का आविष्कार किया है। यह फिल्म स्पष्ट रूप से भंगुर और भारी कांच की प्लेटों की अपेक्षा कहीं अधिक सुविधाजनक थी। हमारी इस शताब्दी के आरम्भ में शौकीन लोगों के लिए सस्ते कैमरे, जिनमें कि यह नई सामग्री अर्थात् सैल्यूलाइड की फिल्म प्रयुक्त होती थी, दूकानों में दिखाई पड़ने लगे। धीरे-धीरे प्रतिलोम छवियों का आकार छोटा और छोटा होता गया और कैमरों के लैन्स शक्ति तथा स्पष्ट रूपांकन की दृष्टि से अच्छे और अच्छे होते गये और सैल्यूलाइड की फिल्म पर लगाई जाने वाली रासायनिक परत प्रकाश और रंगों के

प्रति अधिक और अधिक संवेदनशील होती गई।

## सूर्य की ओर एकटक देखने वाला मनुष्य

हमने इस अध्याय के शुरू में कहा था कि चलचित्र (सिनेमा) को सम्भव बनाने के लिए तीन तत्वों को परस्पर मिलाना पड़ा था। इनमें से पहला तत्व जादू की लालटेन था, दूसरा छवि-अंकन का कैमरा और तीसरा था एक वैज्ञानिक खोज।

सिनेमा के चित्र हमारी आंखों को जो आनन्द प्रदान करते हैं, उनके लिए एक व्यक्ति की दृष्टि की बलि देनी पड़ी है। उस व्यक्ति का नाम विज्ञान के जगत् से बाहर कम ही लोगों को मालूम है। वह था एक बेल्जियमवासी प्राध्यापक जोसेफ प्लातो, जिसका जन्म सन् १८०१ में ब्रूसेल्स में हुआ था।

उसने दृष्टि के यन्त्रजात का अध्ययन किया। उसने इस अध्ययन का प्रारम्भ २८ वर्ष की आयु में बहुत ही खतरनाक परीक्षणों की एक शृंखला से किया। ये परीक्षण इस रूप में थे कि वह २५ सैकिंड तक सूर्य की ओर आंखें खोल कर देखता रहता था, जिससे कि वह यह जान सके कि इसका उसकी आंखों पर क्या प्रभाव होता है। पहली बार इस प्रकार देखने के कारण वह लगभग एक मास तक अन्धा रहा। परन्तु उसने अपने परीक्षणों को जारी रखा और धीरे-धीरे वह सूर्य की ओर देखने के अपने समय को बढ़ाता गया, जबकि उसे यह मालूम था कि इसके कारण उसे अपनी दृष्टि भी गंवा देनी पड़ सकती है। वह विज्ञान के एक महान नेता की भांति अनन्त अन्धकार में

चलता चला गया। ४२ वर्ष की आयु में वह पूरी तरह अन्धा हो गया—ऐसा अन्धा, जिसका कोई इलाज नहीं हो सकता था। सूर्य ने उसकी आंखों के परदे (दृष्टिपटल) को नष्ट कर दिया था। परन्तु फिर भी उससे जितना वन पड़ा, ८२ वर्ष की आयु में अपनी मृत्यु होने तक उसने अपना काम जारी रखा।

उसके इस अनुसंधान से विज्ञान को वहुत अधिक लाभ हुआ। उसने आंख की तथाकथित जड़ता का अध्ययन किया, जिसके कारण कोई भी चित्र उसके बाद भी, जवकि वह हमारी दृष्टि के सामने से हट चुका होता है, लगभग $\frac{२}{६}$ सैकिंड तक हमारे दृष्टिपटल पर वना रहता है। इसका अर्थ यह है कि यदि हम एक के बाद एक अलग-अलग चित्र इस प्रकार देखें कि जिससे उनमें से प्रत्येक चित्र एक सैकिंड के केवल ज़रा से अंश तक ही हमारी आंख के सामने रहे, तो वे चित्र हमारे मस्तिष्क में एक-दूसरे के ऊपर आते चले जाते हैं और यदि वे किसी गति के आनुक्रमिक अंशों को दिखा रहे हों, तो हमें वह गति निरंतर होती हुई दिखाई पड़ेगी।

सर जौन हर्शल ने इस खोज का उपयोग करते हुए एक विल्कुल सीधा-सादा खिलौना बनाया। उसने गत्ते की एक चकत्ती वनाई, जिसके एक भाग में एक चिड़िया का चित्र और दूसरे भाग में एक पिंजड़े का चित्र वनाया। जब इस चकत्ती के वीच में धागा पिरो कर इसे तेज़ी से घुमाया जाता था, तो चिड़िया पिंजड़े के अन्दर बैठी हुई दिखाई देती थी।

इस प्रकार यह तीसरा तत्व, अर्थात् सिनेमा फोटोग्राफी

का वैज्ञानिक सिद्धान्त, स्थापित हो गया था और यही इस आविष्कार का आधार था। मोटेतौर पर कहा जाये, तो इसमें एक कैमरे के द्वारा किसी गतिमान दृश्य को अलग-अलग चित्रों में बांट लिया जाता है और फिर एक प्रकार की जादू की लालटेन के द्वारा उन चित्रों को परदे पर डाल कर फिर परस्पर जोड़ लिया जाता है। यदि बाकी काम को हमारी आंखें न कर पायें अर्थात् इन चित्रों को आपस में मिलाकर एक करके न देख सकें, तो सिनेमा फोटोग्राफी असम्भव ही हो जाये।

सन् १८७२ में एक दिन कैलिफोर्निया के गवर्नर ने श्री ऐडवर्ड मईब्रिज से एक विवाद का फ़ैसला करने को कहा। ऐडवर्ड मईब्रिज किंग्स्टन ऑन टेम्स का निवासी था और अमेरिका में उसने उत्कृष्ट छविकार के रूप में बहुत ख्याति प्राप्त की थी। गवर्नर का अपने कुछ मित्रों से इस बात पर विवाद छिड़ गया था कि सरपट दौड़ते समय किसी क्षण भी घोड़े के चारों पांव एक साथ जमीन से ऊपर उठ जाते हैं या नहीं। मईब्रिज ने पालो आल्टो के घुड़दौड़ के मैदान में चौबीस कैमरे एक कतार में लगा दिये और उनमें से प्रत्येक के शटर के साथ एक-एक धागा बांध दिया। जब घोड़ा उस रास्ते पर सरपट दौड़ता हुआ आया, तो वह एक के बाद एक धागे को तोड़ता गया और इस प्रकार उन कैमरों के शटर दबते गये। यह परीक्षण यद्यपि गवर्नर को कुछ महंगा तो पड़ा, परन्तु यह पूरी तरह सफल रहा और इससे यह बात स्पष्ट हो गई कि सरपट दौड़ते हुए घोड़े के चारों पैर एक सैकिंड के ज़रा से हिस्से के लिए सचमुच ही आकाश में उठ जाते हैं।

मईब्रिज ने अपने इन चित्रों को एक पुस्तक में, जिसका नाम 'दि हौर्स इन मोशन' (दौड़ता हुआ घोड़ा) था, प्रकाशित किया। इस पुस्तक से उन लोगों में तहलका मच गया, जो गति की फोटोग्राफी के सम्बन्ध में परीक्षण कर रहे थे।

सन् १८७४ में जैन्सन नामक एक जर्मनी निवासी ने एक बहुत ही अपरिष्कृत गतिमय चित्र-कैमरे का आविष्कार किया, जिसका नाम उसने 'फोटोग्राफिक रिवाल्वर' रखा। यह कैमरा बहुत जल्दी-जल्दी एक दर्जन चित्र खींच लेता था। उसके बाद एक फ्रांसीसी प्रौफेसर मारे ने एक कैमरा बनाया, जिसने जैन्सन के यन्त्र को एक 'फोटोग्राफिक गन' में बदल दिया। उसने प्रतिलोम छवियां लेने के लिए एक घूमने वाली चकत्ती लगा दी। उसने इस कैमरे का उपयोग एकमात्र वैज्ञानिक कामों के लिए किया, विशेषरूप से मनुष्यों, पशुओं और पक्षियों को गतियों का विश्लेषण करने के लिए। उसने एक सादा-सा प्रक्षेपी (प्रोजैक्टर) भी बनाया, जिससे वह इन चित्रों को अलग-अलग गतियों पर चला कर अपने विद्यार्थियों को दिखा सके।

## आविष्कारक गायब हो गया

जब ईस्टमैन ने अपनी फिल्म बाज़ार में बेचनी शुरू की, उससे कुछ वर्ष पहले ही एक अंग्रेज छविकार विलियम फ्रीज़ ग्रीन, जो ब्रिस्टल का रहने वाला था, गतिमय चित्रों के सम्बन्ध में परीक्षण कर रहा था। वह कांच की प्लेटों का, और यहां तक कि अरंड के तेल में भिगोये हुए कागजों का,

जिससे कि वे पारदर्शक हो जायें, प्रयोग करता था। उसके वाद उसे भी वही बात सूझी, जो ईस्टमैन को सूझी थी, कि सैल्यूलाइड की पट्टी पर किसी संवेदनशील पदार्थ की परत लगा कर उसका प्रयोग किया जाये। वह कोई कारीगर नहीं था, इसलिए उसे अपना कैमरा और प्रक्षेपी यन्त्र औजार बनाने वालों की एक व्यवसाय संस्था से वनवाने पड़े। उस पर शीघ्र ही कर्ज़ चढ़ गया, क्योंकि उसके इन उपकरणों से इतनी अच्छी तरह काम नहीं होता था कि कोई पैसा लगाने वाला व्यक्ति आकर्षित हो सकता। फिर भी उसने सन् १८८९ में अपने आविष्कार को पेटेन्ट करा लिया और हाइडपार्क में जाकर उसने अपने कैमरे से कुछ फुट लम्बी फिलम पर चित्र लिये।

उस रात अपनी दूकान में उसने उस फिलम को डैवलप किया और उसे छापा और उसके बाद उसे प्रक्षेपी में चलाया। और उसके वाद तो बिल्कुल चमत्कार सा हो गया। चित्र में आदमी, गाड़ियां और घोड़े सब लगभग उस प्रकार चल-फिर रहे थे, जैसे कि वे वास्तविक जीवन में चलते-फिरते हैं। वह ऐसा उत्तेजित हो उठा कि उसके लिए अपने इस अनुभव में हिस्सा बटाने वाला कोई साथी ढूंढना आवश्यक हो गया। यद्यपि तव आधी रात का समय था, फिर भी वह दौड़कर गली में गया और अपने इस चमत्कार को दिखाने के लिए एक पुलिस के सिपाही को, जो बहुत शंकित सा होकर उसके साथ आया, अपने साथ घसीट लाया।

परन्तु फ्रीज़ ग्रीन अच्छा व्यवसायी न था और न उसमें इतना दम ही था कि वह अपनी चीज़ पर डटा रहता। जब

उसने देखा कि उसकी कठिनाइयां बढ़ती जा रही हैं और हर डाक से बीजकों (बिलों) को चुकाने के तकाज़े आ रहे हैं, तो उसने अपने पेटेन्ट को गिरवी रख दिया और फिर कभी उसके नवीयन का ध्यान नहीं रखा। सन् १९२१ में उसकी मृत्यु हुई, तब वह बहुत ही फटेहाल था।

शायद सबसे विचित्र मामला आगस्तीं ल प्रिंस का है। वह एक फ्रांसीसी कलाकार और आविष्कारक था। वह लीड्स में आकर रहने लगा था। अपनी न्यूयार्क यात्रा में उसे मईब्रिज की पुस्तक 'हौर्स इन मोशन' को देखने का मौका मिला था और वह गतिमय वस्तुओं की फोटोग्राफी के विचार पर ऐसा मुग्ध हो गया था कि उसने एक कैमरा बनाया, जिसमें फिल्म का प्रयोग किया जाता था और सन् १८८८ में उसने लीड्स में एक पुल के ऊपर होने वाले यातायात की एक फिल्म खींच कर उस कैमरे की परख की। अपने इस आविष्कार को संसार को दिखाने से पहले वह अपने भाई की सलाह लेना चाहता था। उसका भाई दीजों में रहता था। १६ सितम्बर, सन् १८९० के प्रात:काल अपने भाई से भेंट करने के बाद ल प्रिंस दीजों से पारी (पेरिस) जाने के लिए रेलगाड़ी पर सवार हुआ। उस समय से लेकर अब तक उसका और उसके सामान के कई नगों का कोई पता नहीं चला। उसके उस सामान में उसके कैमरे और प्रक्षेपी के रेखाचित्र अवश्य रहे होंगे। यद्यपि ल प्रिंस के लिए खोज बीस से भी अधिक वर्षों तक जारी रही, परन्तु उसका क्या हुआ, यह कभी पता ही न चला। उसकी पत्नी का यह विश्वास था कि अन्य आविष्कारकों ने ल प्रिंस का अपहरण

कर लिया था, क्योंकि उन्हें डर था कि वह सिनेमा फोटोग्राफी के क्षेत्र में उनसे आगे निकल जायेगा और उससे जो बहुत अधिक लाभ होने वाला था, उसे पा लेगा।

ऐडिसन भी सिनेमा के आविष्कारकों में से एक था। मनोरंजक बात यह है कि उसने गतिमय चित्र लेने के लिए न तो कोई कैमरा बनाया और न कोई प्रक्षेपी ही। वह अलग-अलग चित्रों को कांच की प्लेटों पर लेता था। उसके पहले सिनेमा-चित्र में १५८ फोटो थे, जिनमें एक प्रेम का दृश्य दिखाया गया था। इस दृश्य का अभिनय मेनलो पार्क में उसके दो कर्मचारियों ने किया था। इन चित्रों को एक फिल्म की पट्टी पर छाप लिया गया था और उसके बाद उन्हें ऐडिसन के एक नये आविष्कार में, जिसका नाम 'किनैटोस्कोप' था, तेज़ी से चलाया गया। यह उसी प्रकार का यन्त्र था, जैसे कि तमाशाघरों में एक आना देकर एक सन्दूक में झांक कर देखने के लिए होते हैं।

इस किनैटोस्कोप के आविष्कार के ५ वर्ष बाद सन् १८९४ में दो यूनानी तमाशा दिखाने वालों ने लन्दन के एक औज़ार बनाने वाले कारीगर रौबर्ट डबलू. पाल से इस प्रकार का एक यन्त्र बनाने के लिए कहा, क्योंकि वे एक ऐसा यन्त्र अमेरिका से लाये थे और उसके द्वारा लिवरपूल स्ट्रीट स्टेशन के पास एक दूकान में अच्छा पैसा कमा रहे थे।

परन्तु पाल ने सोचा कि यह और भी बढ़िया बात होगी कि एक समय में एक व्यक्ति के बजाय एक पूरे के पूरे जन-समुदाय को ये चलते-फिरते चित्र दिखाये जा सकें। उसने एक प्रक्षेपी बनाया और उसके बाद वह एक कैमरे का अभिकल्प

(खाका) बनाने में जुट गया। उसके बाद उसने लन्दन के एक उत्तरी उपनगर न्यू साउथ गेट में अपनी फिल्में तैयार करने के लिए एक छोटा सा स्टूडियो बनाया।

२० फरवरी सन् १८९६ को पाल ने अपने चलते-फिरते चित्र पहली बार फिंसबरी कालेज में एक जनसमुदाय के सम्मुख प्रदर्शित किये।

इंग्लैंड में पहले-पहल कहानी वाले सिनेमा चित्र उसी ने बनाये। उसी ने पहला समाचार चित्र भी तैयार किया, जो सन् १८९६ की डर्बी की घुड़दौड़ का था; और प्रिंस ऑफ वेल्स को उसी दिन अपने घोड़े को दूसरी बार इस दौड़ में जीतते हुए देखने के लिए निमन्त्रित किया गया, अर्थात् घुड़दौड़ वाले दिन सायंकाल संगीतशाला के पर्दे पर घोड़े को जीतते हुए देखने के लिए। प्रिंस ऑफ वेल्स इसे देखने आया और देखकर बहुत प्रसन्न हुआ।

रौबर्ट डबलू. पाल ब्रिटेन का पहला फिल्म व्यवसायी था। परन्तु सन् १९१० में एक दिन एकाएक उसने अपने इस नये माध्यम के द्वारा बनने वाले भविष्य का बड़े नाटकीय ढंग से अन्त कर डाला। उसने अपनी फिल्मों के सारे संग्रह का, जिसका मूल्य बहुत अधिक था, एक ढेर लगाया और उसे दियासलाई दिखा दी।

शायद वह शुरू-शुरू के सिनेमा देखने वाले लोगों की कुरुचि को देख कर बहुत खिन्न हो गया था। शायद उसे यह विश्वास नहीं था कि कभी फिल्म अशिक्षित लोगों के लिए सस्ते मनोरंजन की अपेक्षा कुछ अधिक उपयोगी वस्तु भी हो सकती है।

**पोलीटैकनिक में आतंक**

सन् १८९० के आस-पास सी० फ्रांसिस जेन्किन्स, जो पहले अमेरिकन कोषागार में आशुलिपिक का काम करता रहा था, और दो जर्मनी निवासी तमाशा दिखाने वाले स्क्लैडैनोवस्की बन्धु उन आविष्कारकों में से थे, जो कैमरे और प्रक्षेपी बनाते थे। परन्तु ईमानदारी के साथ हमें यह मानना पड़ेगा कि सिनेमा फोटोग्राफी के आविष्कार का दावा करने का जितना हक फ्रांस में लीयोन्स नामक नगर के निवासी दो भाइयों, लुई ल्यूमियेर और आगस्ते ल्यूमियेर, को है, उतना अन्य किसी को नहीं है। इन दोनों भाइयों का एक कारखाना था, जिसमें वे छवि-अंकन के उपकरण तैयार करते थे।

वे आपस में इस विषय में बातचीत करते रहते थे कि किस प्रकार ऐडिसन के किनैटोस्कोप को एक ऐसे प्रक्षेपी यन्त्र में बदला जा सकता है कि जिससे केवल एक आदमी ही नहीं, अपितु एक पूरा का पूरा जन समुदाय उन चलचित्रों को देख सके। लुई को एक रात नींद नहीं आई। वह अपने मन में इसी समस्या पर तरह-तरह से विचार करता रहा और उसका यह सुपरिणाम हुआ कि अगले दिन प्रातःकाल उसने अपने भाई को वह समाधान सुझाया, जो उसने रात भर के विचार के पश्चात् निकाला था। उन्होंने तुरन्त उसके अनुसार कार्य शुरू कर दिया और वे २२ मार्च १८९५ को अपनी पहली फिल्म का प्रदर्शन करने में सफल हुए। यह फिल्म बहुत छोटी थी—केवल कुछ सैकिंड की। इसमें ल्यूमियेर के कारखाने के कर्मचारियों को अपनी मध्याह्न भोजन की छुट्टी के समय कारखाने

से निकलते हुए दिखाया गया था। इस फिल्म का प्रदर्शन पारी (पेरिस) में व्यवसायपतियों के एक समूह के सम्मुख किया गया। दर्शकों पर इसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। परन्तु इसके बाद भी ल्युमियेर बन्धुओं को बड़े जनसमुदाय को दिखाने योग्य पर्याप्त फिल्में तैयार करने में नौ महीने और लग गये। इस प्रकार संसार का पहला सिनेमाघर पारी में बुलेवार दे काप्युसीन में ग्रां काफे के तहखाने में २८ दिसम्बर, १८९५ को खुला। इसके कार्यक्रम में एक दर्जन छोटी-छोटी फ़िल्में थीं, जिन सबको दिखाने में कुल २० मिनिट लगते थे। इन फिल्मों में एक रोचक पारिवारिक दृश्य था : 'बच्चे का खाना', 'तरंगों पर तैरती नौका', 'दीवार का ढहाना', एक और दृश्य, जिसमें एक लड़का एक माली को उसके पानी के नल पर पैर रख कर चिढ़ा रहा था और इसके बदले वह खुद पानी से नहा गया और 'स्टेशन पर रेलगाड़ी का आगमन'।

इन फिल्मों को देखने के लिए टिकटघर की खिड़की पर सवेरे से लेकर रात तक कतारें लगी रहीं।

पारी के बाद पहले सार्वजनिक फिल्म प्रदर्शन का आनन्द लन्दन को दिया गया। २० फरवरी, १८९६ को, ठीक उसी दिन जिस दिन रौबर्ट डबलू. पाल ने फिन्सबरी में अपनी फिल्में दिखाई थीं, ल्यूमियेर बन्धुओं के 'अद्‌भुत जीते-जागते चित्र' पहली बार लन्दन में रीजेन्ट स्ट्रीट में पोलीटैकनीक में सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित किये गये। यह कार्यक्रम ठीक वैसा ही था, जैसा कि पारी में दिखाया गया था और ठीक पारी की तरह 'रेलगाड़ी का आगमन' सबसे अधिक रोमांचकारी सिद्ध

हुआ। जब-जब दर्शक रेल के इंजिन को सीधा अपनी ओर आते देखते थे, तो बहुत से लोग आतंकित हो उठते थे। लोग कूद कर दरवाज़े की ओर भागने लगते थे, स्त्रियां बेहोश हो जाती थीं। खेल के पहले प्रदर्शन के बाद प्रबन्धकों ने आहतों की देख-भाल करने के लिए एक नर्स का भी प्रबन्ध कर लिया।

ल्यूमियेर बन्धुओं की फिल्में अब भी विद्यमान हैं और उन्हें किसी भी आधुनिक प्रक्षेपी द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है, क्योंकि फिल्म की चौड़ाई और उसे प्रक्षेपी और कैमरे के अन्दर चलाने के लिए घिर्रियों के छेदों का प्रबन्ध तब से वैसा ही चला आ रहा है। यह उन फ्रांसीसी बन्धुओं को सिनेमा का, जिस रूप में उसे हम आज देखते हैं, सच्चा आविष्कारक मानने के लिए एक उचित कारण है।

परन्तु सन् १८६५ से लेकर अब तक सिनेमा के क्षेत्र में बहुत बड़ी प्रगति हुई है। अपने अस्तित्व के पहले ३४ वर्षों तक मूक रहने के बाद फिल्मों ने बोलना, गाना और उन सब ध्वनियों को उत्पन्न करना सीख लिया है, जिन्हें कि हम वास्तविक जीवन में पाते हैं। अपने आरम्भ से ही सिनेमा अधिक और अधिक सजीव बनने का यत्न करता रहा है और ध्वनि वह सबसे बड़ी उपलब्धि थी, जिसे प्राप्त करना आविष्कारकों का लक्ष्य रहा था।

फिल्म में ध्वनि भरने के लिए अनेक यत्न किये गये। ऐडिसन ने अपने किनैटोस्कोप का सम्बन्ध एक फोनोग्राफ से जोड़ा था, परन्तु यह प्रबन्ध इतना अपरिष्कृत था कि चल नहीं सका। उसके बाद कई आविष्कारक हुए, जिन्होंने ग्रामोफोन को फिल्म से मिलाने की कोशिश की। परन्तु कठिनाई ध्वनि

और चित्र का बिल्कुल ठीक-ठीक इस प्रकार मिलान करने की थी, जिससे शब्द अभिनेताओं के मुखों से उसी समय बाहर निकलें, जबकि उनके ओठ उन्हें बोलने के लिए हिल रहे हों।

## ध्वनि, रंग और गहराई

बोलती फिल्म की समस्या का व्यावहारिक समाधान वैज्ञानिक प्रयोगशाला में हुआ। सन् १९०० के आस-पास जर्मन भौतिकी वैज्ञानिक अर्न्स्ट रूहमर ध्वनि की तरंगों का फोटोग्राफी द्वारा अभिलेख करने में सफल हो गया, किन्तु वह केवल उनका विश्लेषण करने के लिए ही था। परन्तु सन् १९०६ में एक अंग्रेज इंजीनियर यूजेन ए. लोस्टे ने एक ही फिल्म पर चित्र और ध्वनि के एक साथ अभिलेखन की विधि को पेटेन्ट करवाया। वह फिल्म की आधी चौड़ाई का उपयोग चित्र के लिए और बाकी आधी का उपयोग ध्वनि के लिए करता था। जिस प्रश्न का उत्तर वह नहीं खोज पाया, वह यह था कि 'ध्वनिपथ' को फिर ध्वनि में किस प्रकार परिवर्तित किया जाये। अपने परीक्षणों पर लगभग पांच लाख पौंड खर्च कर चुकने और अपना स्वास्थ्य बर्बाद कर चुकने के बाद लोस्टे ने अपने परीक्षणों को छोड़ दिया, क्योंकि उसे यह विश्वास हो गया कि उसकी सूझ किसी काम की नहीं है।

परन्तु वह सही रास्ते पर था। हालांकि बोलती फिल्मों को वास्तविक रूप में लाने से पहले अभी वैद्युतिक और इलैक्ट्रान सम्बन्धी विकास के २० वर्ष और बीतने थे। ध्वनिवर्धक वाल्व का आविष्कार किया जाना था, कार्यक्षम लाउड-

स्पीकर और माइक्रोफोन तैयार होने थे और कई बहुत सूक्ष्म औज़ार अभी बनने थे। कारण यह है कि फिल्म पर ध्वनि का अभिलेखन और फिर उसको फिर ध्वनि रूप में उत्पन्न करना एक बहुत ही जटिल प्रक्रिया है।

सिद्धान्त की दृष्टि से यह मामला बिल्कुल सरल है। एक माइक्रोफोन का, जो प्रत्येक ध्वनि को वैद्युतिक आवेशों में बदलता रहता है, सम्बन्ध एक छोटे से विद्युत के लैम्प से जोड़ दिया जाता है। इस लैम्प का प्रकाश उस विद्युत के आवेशों के अनुसार घटता-बढ़ता रहता है और उस लैम्प के प्रकाश के इन दोलनों को उस फिल्म पर अंकित कर दिया जाता है, जो उस लैम्प के पास से गुजर रही होती है। उसके बाद फिल्म की अनुलोम छवि तैयार की जाती है या यों कहें कि फिल्म के किनारे के साथ-साथ एक संकरा 'पथ' तैयार किया जाता है, जिसके ऊपर प्रकाश को घटती-बढ़ती तीव्रता अभिलिखित रहती है। इसे चित्रवाली फिल्म के साथ इस प्रकार मिला दिया जाता है कि दोनों का, जैसा कि तकनीकी कारीगरों ने इसे नाम दिया है, 'गठबंधन हो जाता है'—इसके फलस्वरूप ध्वनि-फिल्म और चित्र-फिल्म, दोनों में से कोई भी एक-दूसरे से आगे नहीं निकल सकती।

जब फिल्म प्रक्षेपी में से तेज़ी से—प्रति सैकिंड २४ चित्रों की एक-सी गति से—गुजर रही होती है, तब ध्वनिपथ एक विशेष छोटे से डिब्बे में से गुज़रता है, जिसमें एक छोटा-सा, परन्तु लगातार एक-सी तीव्रता से जलने वाला एक शक्तिशाली बल्ब जल रहा होता है। उसका प्रकाश फिल्म के पारदर्शक

ध्वनिपथ पर से गुज़रता है और दूसरी ओर जाकर एक प्रकाश-विद्युत् सैल पर पड़ता है। यह सैल अपने अन्दर गुज़रने वाली विद्युत् की धारा को ध्वनिपथ में से गुज़र कर अपने ऊपर पड़ने वाले प्रकाश की चमक या धुंधलेपन के अनुसार घटाता-बढ़ाता रहता है, क्योंकि इसकी विद्युत् के प्रतिरोध की क्षमता इसके ऊपर पड़ने वाले घटते-बढ़ते प्रकाश के अनुसार घटती-बढ़ती रहती है। यह घटती-बढ़ती विद्युत् धारा प्रवर्धित की जाती है और लाउडस्पीकर में पहुंचती है, जो इसे फिर ध्वनि में बदल देता है।

ध्वनि समेत फिल्म से बनाया गया पहला सिनेमा चित्र 'दी जैज़ सिंगर' था, जिसमें मुख्य अभिनय अल जौल्सन ने किया था। यह फिल्म सन् १९२८ में बनी थी। यह बहुत ही रोमांचकारी सफलता थी। मूक फिल्मों का युग समाप्त हो गया था। कुछ ही वर्षों में फिल्म व्यवसाय का सारा ढांचा ही आमूलचूल बदल गया। फ़िल्मों को तैयार करना और उनका प्रदर्शन करना पहले की अपेक्षा कहीं अधिक महंगा हो गया, क्योंकि अब बहुत अधिक अतिरिक्त उपकरणों की आवश्यकता होती थी। अनेक छोटे-छोटे मक्खियों के घूरे जैसे सिनेमाघर समाप्त हो गये और उनका स्थान वैभवपूर्ण चलचित्र प्रासादों ने ले लिया। फिल्में एक बड़ा उद्योग बन गईं, जिसका प्रत्येक देश के आर्थिक और सामाजिक जीवन पर प्रभाव अधिक और अधिक बढ़ता जाने लगा।

एक और समस्या रंग की थी, जिसमें सिनेमा के आविष्कार के समय से ही आविष्कारकों की बहुत रुचि रही थी। पहले

फ्राज़ग्रोन ने रंगोन फिल्म तैयार करने की एक विधि निकाली थी, परन्तु रंगीन सिनेमा छवि अंकन वस्तुतः तब शुरू हुआ, जब डी० ऐफ० कौम्स्टौक, ऐच० टी० काल्मस और डबल्यू० बी० वैस्टकौट, इन तीनों विज्ञानवेताओं ने सन् १६१३ में बोस्टन में मैसाचुसैट्स तकनीकी विज्ञान संस्थान में इस समस्या का समाधान ढूंढना शुरू किया।

इसके २० वर्ष बाद पहली टैकनिकलर फिल्म—इस फिल्म के आविष्कारकों ने अपनी प्रणाली का यही नाम रखा था—सिनेमाघरों में दिखाई गई। वह फिल्म वाट डिस्ने का एक व्यंगचित्र 'फूल और पौधे' थी। यद्यपि रंगीन फिल्म की यह प्रणाली कोई सरल या सस्ती प्रणाली नहीं थी, फिर भी तब से फिल्म निर्माताओं में यह बहुत लोकप्रिय रही है।

टैकनिकलर के लिए एक विशेष कैमरे की आवश्यकता होती है। लैन्स में प्रवेश करने वाली किरणें एक अर्ध पारदर्शक सुनहले दर्पण द्वारा फाड़ दी जाती हैं और उनको दो 'द्वारों' में बांट दिया जाता है। ये दोनों द्वार एक दूसरे के साथ समकोण बनाते हुए बने होते हैं। इनमें से एक द्वार में दुहरी 'बाईपैक' फिल्म—दो फिल्में, जो साथ-साथ चल रही होती हैं—अनावृत होती हैं और दूसरे द्वार में एक इकहरी फिल्म अनावृत होती है। दुहरी फिल्म के सामने एक मैजेन्टा रंग का फिल्टर लगा होता है। दुहरी फिल्म में से सामने वाली फिल्म प्रकाश की किरणों के नीले तत्व का अभिलेख कर लेती है और उसके पीछे वाली फिल्म के सामने एक लाल फिल्टर लगा होता है, जिस पर केवल हरे तत्व अंकित होते हैं। दूसरे द्वार में एक हरा

फिल्टर लगा होता है और उसमें चलनेवाली फिल्म पर केवल लाल तत्व अंकित होता है।

इन तीनों प्रतिलोम छवियों का एक-एक मैट्रिक्स बनाया जाता है। यह जिलेटिन पर उभरी हुई एक फिल्म होती है। इन मैट्रिक्सों को उनके पूरक रंगों में रंगा जाता है—नीली फिल्म को पीले, लाल फिल्म को हरे और हरी फिल्म को लाल रंग में। एक चौथी फिल्म, जिसे 'कुंजी चित्र' कहते हैं, इन तीन फिल्मों से सफेद और काले रंगों में तैयार की जाती है। उसके बाद एक के बाद एक होने वाली चार प्रक्रियाओं में इन चारों चित्रों को एक इकहरी फिल्म पर छाप लिया जाता है और अब इस फिल्म में सब रंग विद्यमान होते हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों में जर्मनी में एक और अच्छी पद्धति विकसित की गई, जिसमें सामान्य कैमरों का प्रयोग होता है और केवल एक फिल्म का प्रयोग होता है। इस प्रणाली में बहुत पतली-पतली चार परतें फिल्म पर लगी होती हैं। ये नीली, हरी और लाल परतें होती हैं और पहली दो परतों के बीच में एक पीले फिल्टर की परत होती है। इनको इनके पूरक रंगों में डेवलप किया जाता है। युद्ध के बाद रूसियों और अमरीकियों ने इस पद्धति को अपना लिया और इसको और अधिक विकसित किया।

## चौड़ा परदा

सन् १९५० के बाद फिल्म निर्माताओं को अपने ग्राहकों को फिर सिनेमाघरों की ओर आकर्षित करने के लिए नये उपाय

खोजने पड़े, क्योंकि लोग अधिकाधिक टेलीविजन की ओर आकर्षित होने लगे थे, जिसे कि वे अपने घर पर बैठकर देख सकते थे। इसका एक उपाय यह किया गया कि सिनेमा में एक चौड़ा परदा रखा गया—यह परदा बहुत ही बड़ा होता था और कई बार तो इतना बड़ा होता था कि दर्शक समुदाय को लगभग सब ओर से घेरे रहता था। इसमें आवाज़ कई लाउड-स्पीकरों से आती थीं, जो दर्शकों के आगे की ओर, पीछे की ओर और दायें और बांयें लगे होते थे। यह एक ऐसी वस्तु थी, जिसे दर्शक घर पर नहीं पा सकते थे। इनमें से अधिकांश प्रणालियां 'ऐनामौर्फिक' लैन्सों की सहायता से काम करती हैं, जिनका आविष्कार फ्रांसीसी वैज्ञानिक डाक्टर हैनरी श्रेतियें ने किया था। वे उस चित्र को, जिसकी कि फोटो ली जानी होती है, कैमरे में 'दबा कर' फिल्म पर उतार लेती हैं और सिनेमा में उसे फिर फैला देती हैं।

एक पद्धति, जिसे सिनेरामा कहते हैं और जिसका विकास सन् १९३७ से सन् १९५२ तक एक स्वयं शिक्षित अमेरिकन आविष्कारक ने किया था, तीन परस्पर ठीक मेल बिठाये हुए कैमरों और प्रक्षेपियों की सहायता से काम करती है और इसमें दर्शक समुदाय एक अर्ध वृत्ताकार बहुत विशाल परदे से लगभग घिरा-सा रहता है। रूसी पद्धति सिनेरामा और जर्मन पद्धति सिनेटेरियम, जिन दोनों का प्रदर्शन सन् १९६० से दो वर्ष पहले हुआ था, अपेक्षाकृत कुछ और अच्छी हैं। इनमें दर्शक समुदाय को सब ओर से परदे से पूरी तरह घेर लिया जाता है, जो लग-भग ७५० वर्गगज़ का होता है। इस पर चित्र दिखाया जाता

है । इसकी छत भी गुम्वद के आकार की होती है। दर्शक लोग घूम सकने वाली कुर्सियों पर बैठे होते हैं, जिससे वे किसी भी ऐसी दिशा में घूम सकें, जिधर परदे पर कोई आकर्षक दृश्य दीख रहा हो । ये प्रणालियां कैमरों के ऊपर लटकाये गये प्रतिफलक गोलों के प्रयोग द्वारा काम करती हैं। ये कैमरे नीचे से ऊपर की ओर का चित्र लेते हैं और सिनेमा में इस चित्र का प्रक्षेपण भी इसी ढंग से किया जाता है। एक प्रतिफलक गोला एक ऊपर की ओर मुख वाले प्रक्षेपी के ऊपर लगा दिया जाता है और यह प्रक्षेपी सिनेमा के फर्श में गड़ा रहता है।

एक समस्या, जिसका अभी तक सन्तोषजनक हल नहीं हुआ है, किन्तु जिसने अनेक आविष्कारकों को परेशान किया है, स्टीरियोस्कोप वाली फिल्म—तीन डाइमेन्शन वाली फिल्म की समस्या है। स्टीरियोस्कोप के ढंग से देखने की सूझ बहुत पुरानी है। विद्युतीय तार के आविष्कर्ता सर चार्ल्स व्हीटस्टोन ने पहले-पहल स्टीरियोस्कोप के ढंग से देखने का एक यन्त्र बनाया था, जो विक्टोरिया युग में एक बहुत लोकप्रिय खिलौना बन गया था। एक ही दृश्य के दो चित्र, जिनमें से एक दायीं आंख के दृष्टि बिन्दु से देखा गया होता है और दूसरी बांयीं आंख से, इस देखने के यन्त्र में साथ-साथ रख दिये जाते हैं और जब हम उसमें देखने के लिए बने हुए छेदों में से देखते हैं, तो वे मिलकर तीन डाइमेन्शन वाले चित्र बनकर दिखाई पड़ने लगते हैं।

परन्तु यह नहीं हो सकता कि आप सिनेमा के परदे पर एक साथ दो चित्रों का प्रक्षेपण करें और सिनेमा दर्शक उनको

केवल एक आंख से देखता रह सके। इसलिए समस्या यह थी कि इन प्रतिमाओं को अलग-अलग किस प्रकार किया जाये। इसका सबसे अधिक व्यावहारिक तरीका इंग्लैंडवासी दो भाइयों, रेमंड और नाइजैल स्पौटिसवूड, ने आविष्कृत किया था। इसमें दो अलग-अलग ध्रुवीकृत लैन्स होते हैं, जिनके द्वारा चित्र दो फिल्मों पर खींचे जाते हैं। उसके बाद इन दोनों को एक के ऊपर एक रखकर एक ही परदे पर प्रक्षिप्त किया जाता है और दर्शक समुदाय को उन्हें एक विशेष प्रकार की ऐनकों के द्वारा देखना होता है। इन ऐनकों के लैन्स भी अलग-अलग ढंग से ध्रुवीकृत होते हैं, जिससे कि एक आंख उनमें से केवल एक ही चित्र को देखती है।

यह प्रणाली १९५० के बाद के वर्षों में चालू हुई थी। परन्तु जब तीन डाइमेन्शन वाली कुछ फिल्मों का प्रदर्शन सिनेमाओं में किया गया, तो यह पता चला कि सिनेमा देखने वाले लोग उसे देखने के बहुत इच्छुक नहीं हैं। उन्हें सिनेमा में ऐनक पहनना बुरा लगता था। इस प्रकार हम अभी भी एक ऐसी तीन डाइमेन्शन वाली फिल्म के आविष्कार की प्रतीक्षा में हैं, जिसके लिए ऐनक न पहननी पड़े और जो जनता में लोकप्रिय हो सके।

परन्तु सिनेमा केवल तकनीकी खिलवाड़ का ही मैदान नहीं है—यह एक पूर्ण कला के रूप में विकसित हो चुका है और फिल्म निर्माता चाहे कितना ही यत्न क्यों न कर लें, किन्तु यदि वे कोई बहुत ही बढ़िया वस्तु अर्थात् बढ़िया फिल्म प्रस्तुत न कर सकेंगे, तो वे लोगों को टेलीविजन सैटों से हटा कर अपनी ओर आकर्षित न कर पायेंगे।

अध्याय ७

# पक्षी मानव

मनुष्य जाति का सबसे पुराना स्वप्न उड़ने का है और इससे बढ़कर बेतुका स्वप्न भी और कोई नहीं लगता था। डैडेलस और आईकेरस की यूनानी दन्तकथा में इसी अत्यन्त पुरानी आकांक्षा को जताया गया है। परन्तु मनुष्यों को उनके शिक्षकों और दार्शनिकों ने बार-बार यही बताया था कि यह इच्छा कभी पूरी नहीं हो सकेगी।

आविष्कारक स्वप्नद्रष्टा होते हैं। उन्होंने इन चेतावनियों और उपहास की ओर कोई ध्यान भी नहीं दिया। उनका क्षेत्र 'असम्भव' का है। लियोनार्दो दा विन्ची इसी प्रकार का स्वप्न-द्रष्टा था। उसने मनुष्यों के उड़ने की समस्या का एक तकनीकी समाधान खोजने का यत्न किया। उसने एक यन्त्र का नमूना बनाया, जिसके द्वारा उसके विचार में मनुष्य पक्षियों की भांति नकली पंख लगा कर उड़ सकते थे। लियोनार्दो की भांति मानवीय उड़ान के अनेक अग्रदूतों का यह विश्वास था कि उन्हें उड़ने के लिए केवल पक्षियों की नकल भर करनी है। यदि ये प्राणी, जो सबके सब वायु की अपेक्षा अधिक भारी हैं, उड़ सकते हैं, तो उसी प्रकार मनुष्य भी क्यों नहीं उड़ सकते? कई शताब्दियों में किये गये ऐसे परीक्षणों में से अनेक तब

एकाएक समाप्त हो गये, जब परीक्षणकर्ताओं की हड्डियां-पसलियां टूट गई या पक्षियों की नकल करने के प्रयत्न करने में वे अपने साथियों के उपहास के पात्र बने।

## पहले गुब्बारे की उड़ान

सन् १७८३ के जनवरी मास में एक खूब ठंडे दिन जोसेफ मोंगोल्फिये एक घोड़ा-डाकगाड़ी में आविग्नोन की ओर यात्रा कर रहा था। उसके और उसके भाई का फ्रांस में लियोन्स के निकट एक कागज का कारखाना था। वह खिड़की से बाहर बादलों की ओर देख रहा था, जो सहज भाव से आकाश में उड़ते जा रहे थे। उसने मन-ही-मन सोचा कि मनुष्य बादलों की भांति क्यों नहीं उड़ सकते; और क्यों उतनी ही सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान तक नहीं जा सकते ? और आखिर बादल है क्या ? क्या वह धुएं जैसी कोई वस्तु है ?

उस दिन काफी रात गये आविग्नोन में जब वह सराय में अपने कमरे में पहुंचा, तो उसने अपने भोजन के साथ-साथ कागज़ का एक बड़ा तख्ता लाने का भी आदेश दिया। कोई घंटे भर बाद उसके कमरे से किसी चीज़ के जलने की गन्ध आई। सराय का मालिक तुरन्त दौड़कर यह देखने वहां पहुंचा कि कहीं आग तो नहीं लग गई है। परन्तु जोसेफ उसे सान्त्वना देते हुए मुस्कराया और उसने सराय-मालिक से एक परीक्षण देखने के लिए कहा। उसने उस कागज़ का एक घन आकृति का चौखटा-सा बनाया, जो नीचे की ओर से खुला था और बाकी सब ओर से बन्द था। उसने कुछ पुराने अखबारों को,

जो आमतौर से बिस्तर के नीचे रखे रहते थे, एक बर्तन में रखा और उन्हें सुलगा दिया और कागज़ के उस घनाकृति चौखटे को उस आग के ऊपर पकड़ कर रखा। और उसके बाद तुरन्त वह कागज़ का चौखटा तैरता हुआ गर्म हवा के ज़ोर से छत की ओर इस प्रकार उठने लगा मानों कोई अदृश्य हाथ उसे ऊपर उठा रहा हो।

सराय का मालिक इस विचित्र अतिथि के कमरे से भाग खड़ा हुआ और कोई दो मिनट बाद एक नौकर वहां आया और उसने जोसेफ से तुरन्त सराय को छोड़कर चले जाने को कहा। जोसेफ ने इसका बिल्कुल बुरा नहीं माना। उसने एक बड़ी समस्या को हल जो कर लिया था।

वापस ऐनोने पहुंच कर उसने अपने इस परीक्षण को अपने भाई ऐतियेन के सामने दोहराया, जो उसे देखकर आनन्द से रोमांचित हो उठा। ५ जून १७८३ को उन्होंने ऐनोने के सब निवासियों को वायु में उड़ान के जादू का दृश्य देखने के लिए आमन्त्रित किया। उन्होंने एक बहुत बड़ा चौखटा बनाया, जिसके नीचे एक बड़ी गोलाकार अंगीठी थी। उन्होंने कागज़ चिपके हुए कपड़े का एक खाली थैला उस चौखटे पर रख दिया। आग जलाई गई और वह थैला आग में से उठते हुए धुएं से भरने लगा। वह इतने जोर से ऊपर की ओर उठने का यत्न करने लगा कि उसे मोंगोल्फिये के कारखाने के मजदूरों को आठ रस्सियों से बांधकर संभाले रखना पड़ा। उसके बाद ऐतियेन ने आदेश दिया: 'छोड़ दो' और तब वह थैला (गुब्बारा) तेज़ी से ऊपर की ओर उठा और शहर की छतों के ऊपर से

उड़ता हुआ ऊपर और ऊपर उठता गया, यहां तक कि वह आकाश में केवल एक बिन्दु जितना दीखने लगा। ऐनोने के लोग उत्साह से पागल होकर उसके पीछे, जिधर हवा उसे ले जा रही थी, दौड़ने लगे। उन्हें वह कोई सवा मील दूर एक खेत में पड़ा हुआ मिला। अब वह फिर ढीला-ढाला और खाली थैला रह गया था।

'बिजली के धुएं' या 'मोंगोल्फिये वायु' की, जैसा कि उस थैले को ऊपर उठाने वाली रहस्यमय शक्ति का नाम लोगों ने रखा था, कहानी पारी (पेरिस) तक पहुंची, जिससे लोगों में बहुत उत्सुकता उत्पन्न हुई। वैज्ञानिकों की एक समिति ने अधिकारियों के साथ मिल कर उन दोनों भाइयों को राजधानी में आकर अपना करतब दिखाने के लिए निमन्त्रित किया। वे दोनों इस अवसर के लिए एक नया और बड़ा गुब्बारा बनाने के लिए राज़ी हो गये। परन्तु पारीवासी इस नये चमत्कार को देखने के लिए इतने अधीर थे कि वे ऐनोने से आविष्कारकों के आने की प्रतीक्षा नहीं करना चाहते थे। धन इकट्ठा किया गया और एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्राध्यापक शार्ल को रौबैर बन्धुओं की सहायता से एक उसी प्रकार का गुब्बारा बनाने का काम सौंपा गया। रौबैर बन्धु तकनीकी उपकरणों के विख्यात निर्माता थे।

प्रोफेसर शार्ल ने ऐनोने से प्राप्त सूचनाओं का अध्ययन किया, परन्तु वह यह न समझ सका कि वह 'बिजली का धुआं' क्या वस्तु थी। परन्तु यह उसकी वैज्ञानिक प्रतिष्ठा का प्रश्न था और उसमें इतना साहस नहीं था कि वह लोगों को यह पता

चलने देता कि वह इस बात को बिल्कुल ही नहीं समझ पाया है कि वह गुब्बारा किस प्रकार उड़ाया गया था। शायद 'मोंगोल्फिये वायु' जो साधारण वायु से आधे भार वाली है, जिसका कि इन सूचनाओं में ज़िक्र था, हाइड्रोजन हो, जो वायु से बहुत ही हल्की होती है। इसे सन् १७६६ में एक अंग्रेज़ वैज्ञानिक कैवेंडिश ने खोज निकाला था।

इसलिए शार्ल ने अलग ही ढंग से अपना गुब्बारा बनाना शुरू किया। यह रेशम का बना हुआ था और उस पर रबड़ के घोल का लेप कर दिया गया था, जिससे गैस बारह न निकल सके। रौबैर बन्धुओं ने १००० घन फुट हाइड्रोजन गैस भी तैयार की। यह गैस लोहे की छीलनों को गन्धक के अम्ल में डाल कर तैयार की गई थी और यह विधि इतनी खतरनाक थी कि वे लोग आसानी से उसके धमाके से समाप्त हो जा सकते थे। परन्तु सब काम निर्विघ्न पूरा हो गया और २६ अगस्त १७८३ के दिन ३ लाख पारीवासी शांप द मार्स में हाइड्रोजन के पहले गुब्बारे को आकाश में उड़ते हुए देखने के लिए एकत्र हुए। इस गुब्बारे में कोई मनुष्य नहीं बैठा था।

वह गुब्बारा १५ मील दूर जाकर गोनैस गांव के पास उतरा। गंधक के अम्ल के साथ मिली हुई कुछ हाइड्रोजन गैस बाहर हवा में फैल गई थी और गोनैस के भले आदमियों को यह पक्का विश्वास हो गया कि जो चीज खेत में आकाश से गिरी है और गन्धक की शैतानी बदबू फैला रही है, वह स्वयं शैतान के सिवाय और कुछ नहीं है। इसलिए वे सब दल बना कर हाथों में पचांगुरे, मूसल और पत्थर लेकर निकले कि जिससे

इस बुड्ढे शैतान को सदा के लिए समाप्त कर दें।

ऐतियेन मोंगोल्फिये गुप्त रूप से पारी आया था और उसने अपने प्रतिद्वन्द्वी गुब्बारे की उड़ान देखी थी। बाद में उसने अकादेमी के पास एक रिपोर्ट भेजी, जिसमें उसने कहा था कि हाइड्रोजन गैस इतनी खतरनाक है कि उसका गुब्बारों में प्रयोग करना ठीक नहीं है और उसका अपना तरीका, जिसमें कि गर्म हवा का उपयोग किया जाता है, कहीं अधिक निरापद है।

विशेषज्ञ लोगों के दो दल बन गये। एक मोंगोल्फिये के पक्षपाती, जो गर्म वायु वाले गुब्बारों के समर्थक थे और दूसरे शार्ल के पक्षपाती, जो हाइड्रोजन के गुब्बारों के समर्थक थे।

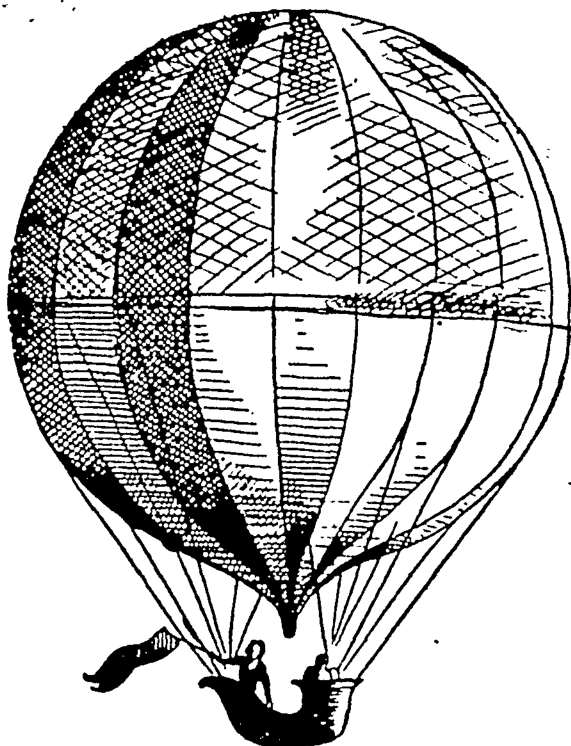
अब तक गुब्बारों में कोई यात्री नहीं गया था। सर्वप्रथम आकाश में उड़ने वाला मनुष्य कौन हो? इस उड़ान के भारी जोखिम को दृष्टि में रखते हुए राजा सोलहवें लुई ने निश्चय किया कि सर्वप्रथम उड़ने वाले मनुष्य दो ऐसे अपराधी होने चाहिएं, जिनको प्राणदंड मिला हो। परन्तु एक तरुण सामन्त ने, जिसका नाम पिलात्रे द रोज़िये था, राजा से विनती की कि सर्वप्रथम उड़ाका उसे बनने दिया जाये, दो हत्यारों को नहीं। बहुत देर बाद अन्त में राजा ने सहमति प्रदान की और द रोज़िये अपने एक मित्र कोम्ते दारलांद के साथ गुब्बारे में चढ़ा। मोंगोल्फिये बन्धुओं ने उन्हें समझाया कि गुब्बारे को किस प्रकार संभालना है और उड्डयन के उस प्रथम महान वर्ष सन् १७८३ की २१ नवम्बर को वे दोनों उस गुब्बारे में उड़े, जिसमें नीचे रखे खटोले में आग का भी प्रबन्ध था।

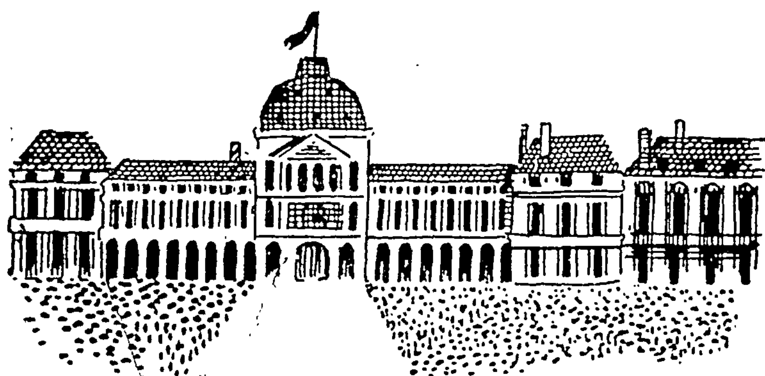
वे मामूली ऊंचाई पर पांच मील तक उड़े। उसके बाद

उन्होंने आग को बुझा दिया और धीमे-धीमे सुरक्षित रूप से नीचे उतर आये।

## गुब्बारे को चलाया किस तरह जाये

इस महान सफलता की सारे योरोप में धूम मच गई। मोंगोल्फिये वन्धुओं की राष्ट्रनायकों जैसी प्रशंसा हुई। परन्तु उड्डयन के इतिहास में प्रौफेसर शार्ल ने और भी बड़ा भाग लिया। उसने अपने हाइड्रोजन के गुब्बारे के लिए एक सुरक्षा कपाटी बनाई और गुब्बारे को नियन्त्रण में रखने के लिए यन्त्र-जात तैयार किया। उसने गुब्बारे के ऊपर एक बड़ा जाल डाल दिया और खटोले को इस जाल से लटका दिया, जिससे उस खटोले का बोझ सारे गुब्बारे पर समान रूप से बंटा रहे। उसने अपने खटोले में मापने वाले यन्त्र, जैसे तापमापी और वायु दाबमापी यन्त्र लगाये और उसने गुब्बारे के उतरने की सुविधा के लिए गुब्बारे का एक लंगर भी तैयार किया। अपने इस नये और सुधरे हुए गुब्बारे के द्वारा उसने अपनी पहली यात्रियों समेत उड़ान की। इस उड़ान में खटोले में वह स्वयं और रौबैर बन्धुओं में से एक था। यह उड़ान १ दिसम्बर १७८३ के दिन की गई। उड़ान से पहले राजा ने एक पुलिस का अधिकारी इस उड़ान को रोकने के लिए भेजा, क्योंकि हाइड्रोजन बहुत ही खतरनाक ढंग की गैस है। इस बात को लेकर शार्ल का राजा से एक अच्छा-खासा नाटकीय विवाद हुआ और जब शार्ल ने यह धमकी दी वह आत्महत्या कर लेगा और गुब्बारे बनाने का रहस्य अपने साथ ही अपनी कब्र में ले जायेगा, तब





प्रोफेसर शार्ल का हाइड्रोजन से भरा गुब्बारा (१७८३)

कहीं जाकर राजा ने उसे उड़ान शुरू करने की अनुमति दी।

हवाई यात्रा के विकास के लिए यह उड़ान सबसे अधिक महत्वपूर्ण थी। यह गुब्बारा दो घंटे तक हवा में रहा और उसके बाद बिल्कुल ठीक ढंग से नीचे उतर आया। परन्तु वह केवल शार्ल के साथी यात्री को नीचे उतारने के लिए नीचे आया था। कारण यह था कि शार्ल एक ऐसे उपक्रम पर उतारू था कि जिसका उत्तरदायित्व वह स्वयं ही उठा सकता था—और वह थी पहली ऊंची तुंगता की उड़ान।

उड़ान के और गुरुत्वाकर्षण से मुक्ति के आकर्षण से मुग्ध होकर उसने गुब्बारे को ऊंचा और ऊंचा उठने दिया, यहां तक कि वह दस हज़ार फीट की अभूतपूर्व ऊंचाई तक पहुंच गया। उसके बाद उसके कानों में ज़ोर की पीड़ा होने लगी, जिसने उसे गुब्बारे में से हाइड्रोजन निकाल कर नीचे उतरने को विवश कर दिया। वह सुरक्षित रूप से नीचे उतर आया।

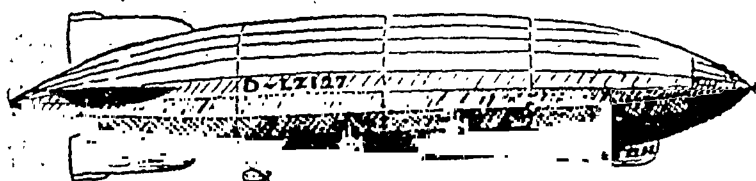
गुब्बारे में उड़ने—वह भी हाइड्रोजन के गुब्बारे में, क्योंकि मोंगोल्फिये बन्धुओं की गर्म वायु वाली प्रणाली बहुत ही अपरिष्कृत और बेढंगी सिद्ध हुई थी—की सनक सारे यूरोप पर सवार हो गई। डोवर के जलडमरूमध्य पर पहली उड़ान सन् १७८५ में एक फ्रांसीसी और एक अंग्रेज ने की। इसके कुछ ही समय बाद द रोज़िये एक गुब्बारे के फट जाने पर गिर कर मर गया—वह उड्डयन के शिकार हुए लोगों की लम्बी पंक्ति में सबसे पहला था। ऐतियेन मोंगोल्फिये १७९९ में शान्तिपूर्वक स्वर्गवासी हुआ; जोसेफ मोंगोल्फिये का देहान्त १८१० में हुआ और प्रोफेसर शार्ल १८२३ तक जीवित रहा।

सारी उन्नीसवीं शताब्दी में आविष्कारक लोग ऐसे गुब्बारे बनाने का यत्न करते रहे, जिन्हें जलयानों की भांति चाहे जिस दिशा में ले जाया जा सके। यह काम एक जर्मन अफसर काउंट जैप्पैलिन ने पूरा किया। उसने सन् १९०० के आस-पास सर्वप्रथम विश्वसनीय वायुयान बनाये, जिनमें उसने नये आविष्कृत पैट्रोल और डीज़ल के इंजिन लगाये। उसने इसके लिए खूब बड़े-बड़े गुब्बारे, जो कई सौ फीट लम्बे होते थे, तैयार किये। प्रथम विश्व-युद्ध में जर्मनीवासियों ने इन वायुयानों से इंग्लैंड पर बम बरसाये, परन्तु उनके वायुयानों की क्षति बहुत अधिक हुई। कारण यह था कि ये भनभनाते हुए, लम्बी सिगरेट के आकार वाले दैत्य जब धीरे-धीरे उड़ते हुए बादलों से बाहर आते थे और उन पर सर्चलाइट की किरणें पड़ती थीं, तो विमानवेधी तोपों से उन पर निशाना लगाना बहुत ही सरल होता था।

परन्तु जुलाई १९१९ में जिस विमान ने सबसे पहले अतलांतक को पार किया, वह जैप्पैलिन वायुयान नहीं, अपितु एक अंग्रेजी वायुयान आर-३४ था। इस विमान में तीस चालक थे और स्काटलैंड से लौंग आइलैंड तक की यात्रा इसने १०८ घंटे में पूरी की।

सत्रह वर्ष बाद एक घटना ऐसी हुई, जिसने परिवहन के साधन के रूप में वायुयान के और आगे विकास को एकदम बन्द कर दिया। जर्मनी का सबसे बड़ा जैप्पैलिन विमान हिंडनबर्ग, जो कई बार यात्रियों को लेकर अतलांतक के आर-पार जा चुका था, लेकहर्स्ट में उतरने की कोशिश करते हुए फट

गया, जिससे बहुत से व्यक्ति मारे गये। मोंगोल्फिये बन्धुओं की यह चेतावनी कि हाइड्रोजन गैस वायुयानों के गुब्बारों को भरने की दृष्टि से बहुत खतरनाक है, भयानक रूप से सच निकली। हिंडनबर्ग वायुयान को निरापद हल्की गैस हीलियम से भरा जा सकता था, परन्तु उन दिनों जर्मनी हिटलर के नेतृत्व




जैप्पैलिन का वायुयान

में लड़ाई की तैयारियों में जुटा हुआ था। उसे यह गैस विदेशों से खरीदनी पड़ती। उसने अपनी सीमित विदेशी मुद्रा को शस्त्रास्त्रों के लिए कच्चा माल खरीदने में लगाना पसन्द किया। जैप्पैलिन के यात्रियों की सुरक्षा का ध्यान नहीं रखा गया और इसलिए वायु की अपेक्षा हल्के परिवहन का विकास ठप हो गया।

**दो अन्य भ्रातृ-युगल**

मनुष्य ने गुब्बारों द्वारा उड़ना सीख लिया था, फिर भी वह अपने साथी प्राणियों, पक्षियों, का अनुकरण करने का स्वप्न

देखता रहा, जिन्हें कि आकाश में उड़ने के लिए वायु से हल्की किसी गैस की आवश्यकता नहीं होती। वे पक्षी कैसे उड़ते हैं ?

अंग्रेज वैज्ञानिक सर जार्ज कैले पहला व्यक्ति था, जिसने इस प्रश्न का आधुनिक रूप से अध्ययन किया। जब वह १० वर्ष का बालक था, तभी उसने अपने घर पर एक यन्त्र बना कर उसकी सहायता से उड़ने का यत्न किया था। सन् १७९९ में, जब उसकी आयु २६ वर्ष की थी, उसने एक छोटी-सी चांदी की पटिया पर उन शक्तियों का एक आरेख अंकित किया, जो पक्षियों की उड़ान में निहित होती हैं और उस पटिया के दूसरी ओर उसने एक चित्र बनाया, जिसमें उसने दिखाया कि उसकी सम्मति में उड़ने वाले विमान की शक्ल-सूरत कैसी होनी चाहिए। यह छोटी-सी चांदी की पटिया, जिस पर अंग्रेजी में 'जी० सी०, १७९९' ये हस्ताक्षर हैं, अब साउथ कैन्सिंगटन के विज्ञान संग्रहालय में रखी हुई हैं। इसके दस वर्ष बाद उसने वायु से भारी उड़ने वाले यन्त्रों के निर्माण की सम्भावना के विषय में एक लम्बा लेख लिखा, जिसमें उसने कहा था कि ऐसे यन्त्रों में कड़े पंख होने चाहिएं और उन्हें पक्षियों की भांति उड़ना चाहिए। जब यान्त्रिक उड़ान वस्तुतः सम्भव हो पाई, उससे लगभग सौ वर्ष पहले लिखे गये इस लेख में उसने भविष्य वाणी-सी करते हुए लिखा : "मुझे पूरा विश्वास है कि वायु मार्ग द्वारा मनुष्यों और सामान का परिवहन जलमार्ग की अपेक्षा अधिक सुरक्षित रूप से और २० से लेकर १०० मील प्रति घंटे तक की चाल से कर पाना सम्भव होगा। उसमें शक्ति के लिए सम्भवतः बोल्टन-वाट के भाप के इंजिन का

प्रयोग किया जा सकता है, पर क्योंकि इसमें हल्केपन का महत्त्व बहुत अधिक है, इसलिए इस बात की सम्भावना है कि ज्वलन-शील चूर्णों या द्रवों के आकस्मिक प्रज्वलन द्वारा वायु को फैलाने की विधि का उपयोग किया जाये।"

इस प्रकार सर जार्ज कैले ने वायु से भारी उड़ने वाले यन्त्रों को शक्ति देने के लिए पैट्रोल-चालित मोटर, गैस-चालित टर्बाइन और जैट इंजिनों की ओर संकेत कर दिया था।

उड्डयन का इतिहास मोंगोल्फिये बन्धुओं से प्रारम्भ हो चुका था। मनुष्य के यान्त्रिक उड़ान के चिर प्राचीन स्वप्न को अन्ततः साकार करने में दो अन्य भ्रातृ-युगलों ने भी भाग लिया।

इनमें से पहले उत्तरी जर्मनी के एक छोटे-से प्रान्तीय नगर ऐन्क्लाम के निवासी लिलियैन्थल बन्धुओं का नाम आता है। पास के एक खादर में दो लड़के, ओटो और गुस्टाव, घंटों घास में लेटे रहते और शिकरों, बाजों और सारसों को ध्यान से देखते रहते। वे धीरे-धीरे सरकते हुए इन पक्षियों का रहस्य खोज निकालने के लिए, यह देखने के लिए कि वे हवा में किस प्रकार ऊपर उठते हैं, उनके पास पहुंच जाते। एक बार वे एक सारस के इतना निकट जा पहुंचे कि उसने चौंक कर अपने बड़े-बड़े पंख फैला दिये और वायु के प्रतिकूल ऊपर उड़ गया।

इस खोज से ओटो और गुस्टाव में एक नया आवेश भर उठा। उन्हें लगा कि उड़ान के रहस्यों में से एक यह भी होना चाहिए। उन्होंने तुरन्त पंख बनाने शुरू किये और वायु के प्रतिकूल उड़ने के लिए उनके द्वारा प्रयत्न किया। उनके द्वारा

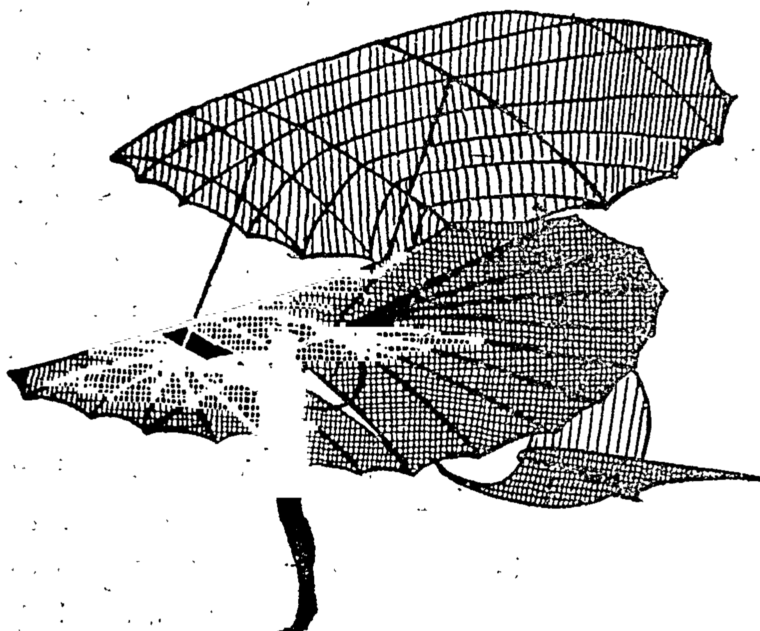
वे अभी पृथ्वी से ऊपर तो नहीं उठ पाये, परन्तु उन्हें इतना प्रवल खिचाव अनुभव हुआ कि वे यह समझ गये कि वे ठीक मार्ग पर जा रहे हैं।

ये दोनों लिलियैन्थल बन्धु गरीब थे और अनेक वर्षों तक उनके पास इतना पैसा भी कठिनाई से ही जुट पाता था, जिसके द्वारा वे स्वयं और उनकी विधवा मां भूखों मरने से बच सकें। इसलिए उन्हें अपने परीक्षणों को भविष्य के लिए छोड़ देना पड़ा। सन् १८९१ में जब ओटो लिलियैन्थल की आयु ४३ वर्ष की थी, तब कहीं जाकर वह बर्लिन के निकट थोड़ी-सी भूमि खरीद सका, जिसमें एक पचास फुट ऊंची टेकरी भी थी। तभी वह वायु में उड़ने के परीक्षणों के लिए पंख जैसी रचनाएं बनाने के लिए भी पैसा जुटा सका।

यहां आकर गुस्टाव की सहायता से ओटो ने उस टेकरी के ऊपर से कुदानें मारनी शुरू कीं, जिससे वह अपने पंखों की सहायता से हवा में कुछ देर उड़ता रह सके और उसके बाद कुछ कम या अधिक धीरे से उस टेकरी के निचले भाग में उतर सके। उसके बाद वह वायु के विरुद्ध दिशा में पहाड़ी के ऊपर की ओर दौड़ता था और ढलान के दूसरी ओर पहुंचते-पहुंचते पंखों के कारण हवा में उड़ जाता था। अन्ततोगत्वा उसे अपनी पहली वास्तविक सफलता तब मिली, जबकि वह किरमिच और लकड़ी की फट्टियों से बने दो बड़े पंखों वाले एक यन्त्र के सहारे वायु में उड़ता हुआ पचास फुट दूर तक चला गया।

९ अगस्त १८९६ को एक बार वह फिर इसी प्रकार पंखों के सहारे उड़ान के लिए निकला। उसका भाई गुस्टाव उसके

साथ था कि जिससे घड़ी देखकर उसे समय बताता रह सके। जब वह पचास फीट की ऊंचाई पर था, तब एकाएक उसका यन्त्र हवा के अप्रत्याशित झोके में जा फंसा, जिसने उसे भूमि पर ला पटका। ओटो की रीढ़ की हड्डी टूट गई और वह मर गया। उसके अन्तिम शब्द ये थे : "बलिदान तो करने ही होंगे।"



ओटो लिलियैन्थल अपने दो पंखों वाले यन्त्र से उड़ रहा है (१८९६)

ओहियो राज्य में कहीं पर एक और भ्रातृ-युगल ने इस दु:खद समाचार को पढ़ा और उन पर इसका असाधारण प्रभाव पड़ा। विल्बर राइट और औविल राइट की एक साइकिलों की दूकान थी। परन्तु उन्हें अन्य कोई वस्तु इतनी आकर्षक

नहीं लगती थी, जितनी कि उड्डयन की समस्या। ओटो लिलियैन्थल की मृत्यु का उन पर यह असर पड़ा कि उन्होंने यह निश्चय किया कि वे जितना भी रुपया और समय निकाल सकेंगे, उसे उड्डयन के अध्ययन में लगा देंगे।

## किटी हौक पर बारह सैकिंड की उड़ान

"यदि परमात्मा चाहता कि हम उड़ें तो वह हमें पंख दे देता।" यह था वह पूर्वाग्रह, जो आमतौर से लोगों में जमा हुआ था और उड़ान के परीक्षणों के शिकार हुए अनेक व्यक्ति इसी शिक्षा की ओर संकेत करते प्रतीत होते थे। परन्तु राइट बन्धु अपने प्रतिद्वन्द्वियों की अपेक्षा केवल अधिक सुचारु रीति से काम करने वाले ही नहीं थे, अपितु सतर्क भी अधिक थे। अपनी जान को जोखिम में डालने के बजाय उन्होंने अपने पहले नमूने पतंगों के रूप में बनाये, जिनका नियन्त्रण भूमि पर से रस्सियों द्वारा किया जाता था। उन्होंने देखा कि सबसे कठिन समस्या सन्तुलन की है, अर्थात् यह कि यन्त्र को वायु में किस प्रकार स्थिर रखा जाये और उसे उलटने से बचाये रखा जाये।

एक दिन जब विल्बर दूकान में एक ग्राहक का कुछ काम कर रहा था, तब उसकी दृष्टि एकाएक फालतू पुर्ज़े रखने के एक डिब्बे के किनारों पर पड़ी, जिन्हें किसी समय अनजाने ही उसकी उंगलियों ने दोनों सिरों पर विभिन्न कोणों पर मोड़ दिया था। उस डिब्बे को देखकर उसके मन में यह विचार आया कि पंखों को इस प्रकार बनाया जा सकता है कि उन्हें ऊपर नीचे किया जा सके और उड़ान के समय उन्हें इच्छानुसार झुकाया

या उठाया जा सके। अगस्त १८९९ में इस यन्त्र का, जिसके कि पंख झुकाये या उठाये जा सकते थे, पहला छोटा-सा नमूना परख के लिए तैयार हो चुका था। दोनों भाई उत्तरी कैरोलिना में एक एकान्त स्थान पर, जिसे किटी हौक कहा जाता था, गये। इस स्थान पर वायु की दशाएं अनुकूल रहती थीं।

चार वर्ष से भी अधिक समय तक किटी हौक में वे परीक्षणों में जुटे रहे। उनकी प्रगति बहुत मन्द थी और उन्हें अनगिनत निराशाओं का सामना करना पड़ा। एक के बाद एक नमूना बनाया जाता, उड़ा कर देखा जाता और फिर त्याग दिया जाता। हर गर्मियों में राइट बन्धु नये यन्त्र, नये विचार और नया उत्साह लेकर लौटते। उनका पहला, बड़े पैमाने पर बनाया गया उड़ने वाला यन्त्र, जो एक आदमी को लेकर उड़ सकता था और जो एक इंजिन की शक्ति से चालित था—इस इंजिन को भी उन्होंने स्वयं बनाया था—१९०३ की ग्रीष्म ऋतु में बन कर तैयार हो चुका था और जब वे उस यन्त्र के साथ किटी हौक पहुंचे, तो उन्हें यह मालूम था कि गर्मियों का वह मौसम बीतने से पहले या तो वे यान्त्रिक शक्ति के द्वारा वायु में उड़ने वाले पहले व्यक्ति होंगे या फिर वे इस प्रयत्न को सदा के लिए छोड़ देंगे।

परन्तु उनके काम में इतनी कठिनाइयां आईं और दुर्घटनाएं हुईं कि उस महान परख के लिए सब चीज़ों के तैयार होते-होते १४ दिसम्बर की तारीख आ पहुंची। सबसे पहले उड़ने वाले यन्त्र को उड़ते देखने के लिए किटी हौक के ग्रामीणों को निमन्त्रित किया गया था। उनमें से थोड़े से लोग आये थे।

इस यन्त्र को पहली बार चलाने का गौरव किसे प्राप्त हो, इसके लिए दोनों भाइयों ने लाटरी डाली। उसमें विल्बर का नाम निकला और वह उस यन्त्र में चढ़ा।

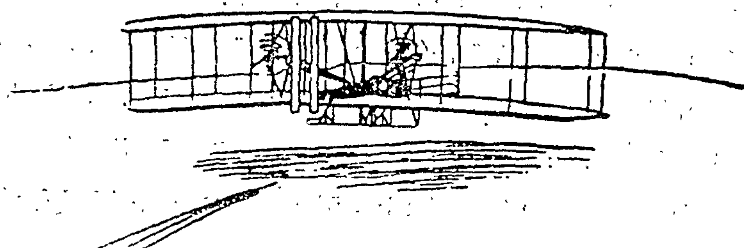
वह यन्त्र उड़ान शुरू करने के लिए बनाई गई पटरियों पर दौड़ा, ऊपर हवा में उठा, कुछ देर हवा में रहा और उसके बाद एकाएक नीचे आ गिरा, जिससे उसके कई पुर्जे टूट गये। विल्बर को चोट नहीं आई। निराश ग्रामीणों से कहा गया कि वे तीन दिन बाद फिर आयें, उस दिन इसी प्रकार का प्रयत्न फिर किया जायेगा।

सन् १९०३ की १७ दिसम्बर के उस प्रातःकाल हवा खूब तेज चल रही थी। परन्तु राइट बन्धुओं ने निश्चय किया कि या तो यह काम आज ही होना चाहिए या फिर यह कभी न न होगा। गाँव से इस घटना को देखने के लिए केवल चार पुरुष और एक बालक आया था। ऑर्विल इस यन्त्र में चढ़ा। विल्बर ने यन्त्र का पंखा चालू किया और यन्त्र को बांधे रखने वाली तार को खोल दिया गया।

१० वर्ष बाद ऑर्विल ने बताया कि वह अब तक भी यह नहीं समझ पाया कि उसने एक अनपरखे हुए यन्त्र में सत्ताईस मील प्रति घंटे की तेज़ हवा में अपनी सबसे पहली उड़ान भरने की हिम्मत कैसे की। "अनुभव के इन वर्षों के बाद मैं अपने उस दुस्साहस पर दंग रह जाता हूं" उसने कहा।

४० फुट दूर तक पटरियों पर दौड़ने के बाद वह यन्त्र हवा में ऊपर उठा। वह कोई १० फुट ऊंचाई तक ऊपर गया; फिर थोड़ा-सा नीचे आया और फिर ऊपर उठा और जिस स्थान से

वह पटरी से ऊपर हवा में उठ गया था, वहां से १२० फुट दूर जाकर सकुशल भूमि पर उतर आया। यह उड़ान १२ सैकिंड तक रही। यह वायु की अपेक्षा भारी, इंजिन की शक्ति से चलने वाले यंत्र की पहली सफल उड़ान थी।



किटी हौक में राइट बन्धुओं द्वारा उड़ाया गया पहला विमान

अब दूसरी उड़ान करने की विल्बर की बारी थी। उसने वायु में लगभग २०० फुट की दूरी तय की। तीसरी उड़ान फिर औविल ने की। वह और भी कुछ दूर गया और वायु में १५ सैकिंड तक रहा। चौथी उड़ान में, जो अन्तिम थी, विल्बर ने हवा में ८५० फुट की दूरी लगभग एक मिनिट में तय की। परन्तु भूमि पर उतर आने के बाद जब वहां उपस्थित लगभग आधा दर्जन व्यक्ति उसे बधाई दे रहे थे, तब हवा का एक झोंका आकर उसके यन्त्र से लगा, जिससे यन्त्र टूट-फूट गया। परन्तु अब इसका उतना महत्व नहीं था। वह महान दिवस समाप्त हो चुका था और विमान का इतिहास प्रारम्भ हो गया था।

अपनी सफलता के बाद विल्बर केवल ९ वर्ष जीवित रहा, परन्तु औविल सन् १९४८ तक जीवित रहा और उसने अपने

जीवन काल में विमानों की चाल को ३० मील प्रति घंटे (यह वह चाल थी, जिससे वह किटी हौक में उड़ा था) ध्वनि के वेग तक, अर्थात् २५ गुना बढ़ते हुए देखा। जब ७७ वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हुई, उसके कुछ ही समय पहले ध्वनि-रोध को ऐसे विमानों द्वारा तोड़ा जा चुका था, जो उसके पहले विमान से इतने भिन्न थे कि दोनों के लिए 'विमान' शब्द का प्रयोग करना अनुचित सा जंचता है। एक नये प्रकार का विमान, जिसे जैट विमान कहा जाता है, बन चुका था। यह उतनी ही बड़ी क्रांति थी, जितनी बड़ी कि १७ दिसम्बर १६०३ वाली थी।

### जैट इंजिन और गैस टर्बाइन

फ्रैंक व्हिटल के नाम से केवल वे उड़ान के शौकीन लोग ही परिचित थे, जो दो विश्व-युद्धों के बीच के वर्षों में हैन्डन हवाई अड्डे पर उसकी हवाई कलाबाजियों को देखा करते थे। अपने प्रदर्शन के समय व्हिटल उन्हें जो शानदार साहस के करतब दिखाया करता था, उनमें उन्हें बहुत आनन्द आता था। उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं था कि यह तरुण विमान चालक ११ वर्ष से एक विचार को साकार करने के लिए प्रयत्नशील था। यह विचार उसके मन में तब आया था, जब वह लड़का ही था और रायल एयरफोर्स में काम सीख रहा था।

उसका जन्म लीमिंग्टन में हुआ था और जब उसकी आयु १६ वर्ष की थी, तब वह रौयल एयर फोर्स की कैडेट कोर में भर्ती हुआ। उसने रौयल एयर फोर्स के कालेज में शिक्षा प्राप्त

की और वहीं उसने सन् १९२९ में, जब उसकी आयु २२ वर्ष की थी, अपने परीक्षा के निबन्ध में, जो 'वायुयानों का भावी विकास' के विषय पर था, अपने नये विचार प्रकट किये। उसके अध्यापकों ने भविष्य में वायुयानों के अभिकल्प (डिज़ाइन) की संभावित प्रवृत्ति के सम्बन्ध में जो कुछ कक्षाओं में पढ़ाया था, उसके प्रतिकूल उसने इस निवन्ध में यह लिखा कि उसकी सम्मति में पंखे और पैट्रोल के इंजिन एक दिन प्रयुक्त होने बन्द हो जायेंगे और उनके बजाय विमान जैट (पतली नली) के धक्के से चला करेंगे।

परन्तु वह अपने विचारों का सैद्धान्तिक विकास करके ही नहीं रुक गया। उसने उस नये प्रकार के धक्के से चलने वाले एक बिल्कुल नये प्रकार के इंजिन का आविष्कार किया—यह ठीक है कि यह आविष्कार केवल कागज पर ही था—और वह अपनी योजनाओं को लेकर सरकारी विभागों, उड्डयन के विशेषज्ञों और उद्योगपतियों के पास गया। परन्तु उन योजनाओं में किसी को भी एक युवक के अत्यधिक कल्पनाप्रवण स्वप्नों के अतिरिक्त और कोई वस्तु दिखाई न पड़ी। उसने सन् १९३० में अपने इस आविष्कार को पेटेन्ट करा लिया, परन्तु उसके पास इतना पैसा नहीं था कि वह उस पेटेन्ट को आगे भी नया करवाता रह सकता। उसे ऐसा लगता था कि उसे अपने आविष्कार को काफी लम्बे समय तक यों ही रख छोड़ना होगा।

परन्तु उसके तीन मित्रों को उस पर बहुत भरोसा था और उन्होंने परस्पर मिल कर पहला जैट इंजिन बनाने के लिए काफी पैसा इकट्ठा कर लिया। जब द्वितीय विश्व-युद्ध शुरू हो

गया, तब कहीं जा कर सरकार ने व्हिटल के आविष्कार में रुचि दिखाई और जैट की शक्ति से चलने वाला पहला विमान गुप्त रूप से तैयार किया गया।

उसके बाद पहली परख-उड़ान का दिन आया : १४ मई १९४१। उस विमान को, जो एक ग्लौस्टर विमान था, प्रसिद्ध परख विमानचालक जैरी सायर्स ने उड़ाया। इस जैरी सायर्स की बाद में एक विमान के गिर जाने से मृत्यु हुई। वह इस जैट विमान को ४० मिनिट तक उड़ाता रहा। वास्तविक आनन्द की बात यह थी कि इस बिल्कुल नये प्रकार के विमान में हर एक बात ठीक-ठीक योजना के अनुसार ही होती रही।

जैट इंजिन विमान को फैलती हुई गैसों की शक्ति से आगे धकेलता है। ये गैसें विमान के पिछले भाग में एक नली से बड़े जोर के साथ बाहर निकल रही होती हैं। परन्तु यह पुराने गतिप्रदाता (मोटर), टर्बाइन के सिद्धान्त का भी उपयोग करता है। पैट्रोल-चालित और डीज़ल इंजिनों में जिस प्रकार गैसों का एक सिलिंडर के अन्दर अलग-अलग विस्फोट होता है, उससे पिस्टन ऊपर और नीचे आता-जाता है, वैसा जैट इंजिन में नहीं होता। उसके बजाय ईंधन निरन्तर जलता रहता है और फैलती हुई गैसें एक टर्बाइन के फलकों पर दबाव डालती हैं, जिसके कारण वे फलक एक चक्कर में घूमने लगते हैं। उसके बाद वे गैसें बड़े वेग से पीछे की ओर लगी एक नली में से ज़ोर से एक फुहार के रूप में निकलती हैं और उनकी बाहर की वायु पर ठीक वैसी ही क्रिया होती है, जैसी क्रिया के परिणामस्वरूप कारतूस का विस्फोट बन्दूक को पीछे की ओर ज़ोर का धक्का

देता है। टर्बाइन का सम्बन्ध एक संपीडक (कम्प्रैसर) के साथ रहता है। यह संपीडक ज्वलन के लिए आवश्यक वायु को अन्दर खींच लेता है। वायु को अन्दर खींचने की यह व्यवस्था विमान के अगले भाग में रहती है।

जैट इंजिन पैट्रोल इंजिन की अपेक्षा कहीं अधिक सरल यन्त्र है। इसमें अपेक्षाकृत अधिक सस्ते ईंधन का उपयोग किया जा सकता है। इसमें चिनगारी देने वाले प्लगों और ज्वलन व्यवस्था की कोई आवश्यकता नहीं होती और इसमें आगे बढ़ाने वाले पंखे की भी कोई आवश्यकता नहीं होती। इस इंजिन के द्वारा विमान पंखे से चलने वाले विमान की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्र चाल से जा सकता है और कहीं अधिक हल्की हवा में उड़ सकता है।

परन्तु जैट इंजिन ने एक और नये गतिप्रदाता, गैस टर्बाइन को भी जन्म दिया। फैलती हुई गैसों को ज़ोर से एक नली में से बाहर निकाल देने के बजाय उनका उपयोग केवल टर्बाइन को चलाने के लिए किया जाता है। वह टर्बाइन आगे पहियों को, जलयानों की पंखियों को, और यहां तक कि पुराने ढंग के विमानों के पंखों को भी चलाता है। टर्बोप्रौप (टर्बाइन और पंखे से चलने वाले) विमान अब जैट विमानों के साथ ही साथ व्यवहार में आने लगे हैं। जैट और टर्बाइन का उपयोग रेल के इंजिनों, जहाजों और मोटरकारों को चलाने के लिए किया भी जाने लगा है। निकट भविष्य में उद्योगों में भी यह जैट टर्बाइन सबसे अधिक कार्यक्षम गतिप्रदाता (मोटर) बन कर रहेगी।

एक और नये प्रकार का वायुयान, जिसकी भविष्य में संचार के साधन के रूप में अधिकाधिक भाग लेने की सम्भावना है, हैलीकोप्टर है। इस यन्त्र का कागज़ पर अभिकल्प भी और इसका एक छोटा-सा नमूना भी सन् १५०० के आस-पास लियोनार्दो दा विंची नें तैयार किया था। परन्तु यह अस्तित्व में केवल अभी हाल के वर्षों में ही आया है। इसके निर्माण का श्रेय विभिन्न देशों के अनेक आविष्कारकों को है। इनमें से मुख्य प्रयत्न इगोर सिकोर्स्की का रहा, जो एक रूसी वायुयान इंजीनियर था, पर आकर अमेरिका में बस गया था। सिकोर्स्की के बनाये हुए हैलीकोप्टर अब अमेरिका और यूरोप में अनेक कार्यों के लिए प्रयुक्त किये जा रहे हैं। जैसा कि एक बार सिकोर्स्की ने कहा था, जिन कामों को घोड़ा कर सकता है, उन सब कामों को हैलीकोप्टर भी कर सकता है। इस दृष्टि से वे सामान्य विमानों से कहीं आगे हैं। उनके लिए हवाई पट्टियों या हवाई अड्डों की आवश्यकता नहीं होती। वे तो किसी भी चौक या छत या मकान के बड़े आंगन में से ऊपर उड़ सकते या वहां नीचे उतर सकते हैं। वे आगे की ओर उड़ सकते हैं, दायीं या बांयीं ओर और यहां तक कि ठीक पीछे की ओर भी उड़ सकते हैं या हवा में शलभों की भांति मंडराते रह सकते हैं।

हैलीकोप्टर में कोई स्थिर पंख नहीं होते, अपितु बैठने के कक्ष के ऊपर भूमि के समानान्तर एक बड़ा पंखा (रोटर) होता है, जो वायुयान को ऊपर उठाता है और जिस कोण पर उस पंखे का फलक हवा पर दबाव डालता है, उस कोण के द्वारा ही हैलीकोप्टर की उड़ान की दिशा नियन्त्रित होती है। इसमें

एक और लम्ब रूप (खड़ा) पंखा भी होता है, जो हैलीकोप्टर की पूंछ के पास लगा होता है। यह उसकी दिशा मोड़ने में सहायता देता है और उसे ऊपर लगे हुए बड़े पंखे के साथ-साथ घूमने से रोके रखता है।

यह मन्दगामी और धीरे-धीरे काम करने वाला वायुयान है। परन्तु केवल इसी कारण यह उड़ने वाले यात्रियों को ध्वनि से भी तेज़ चाल से समताप-मंडल में उड़ने वाले विमान की अपेक्षा कहीं अधिक आनन्द दे सकता है, क्योंकि उस तीव्रगामी विमान में तो यात्रियों को मनुष्य की शानदार सफलता अर्थात् वायु की विजय का आनन्द ले पाने के लिए अवसर ही नहीं मिलता।

अध्याय ८

# परमाणु के रहस्य

'परमाणु' शब्द वस्तुतः भ्रामक नाम है। लगभग ढाई हज़ार वर्ष तक लोगों का यह विश्वास रहा कि सम्पूर्ण पदार्थ (भौतिक तत्व) ऐसे बहुत ही छोटे-छोटे कणों से मिल कर बना हुआ है, जिनके और छोटे टुकड़े नहीं हो सकते। दार्शनिक डिमोक्रिट्स ने, जिसने लगभग ५०० ई० पू० में इस सिद्धान्त की स्थापना की थी, इन छोटे-छोटे कणों को 'ऐटम' (परमाणु) नाम दिया था। 'ऐटम' शब्द यूनानी शब्द 'ऐटौमौस' से बना है, जिसका अर्थ है—अविभाज्य। यह पता चला था कि प्रत्येक तत्व के अपने अलग प्रकार के परमाणु होते हैं और अब से लगभग दो पीढ़ी पहले तक यह समझा जाता था कि एक प्रकार के परमाणु को, अर्थात् किसी एक तत्व को, किसी अन्य प्रकार के परमाणुओं में बदल पाना असम्भव है। मध्यकालीन कीमियागरों को, जो यह मानते थे कि सीसे या किसी अन्य घटिया धातु को किसी जादू के द्वारा स्वर्ण बनाया जा सकता है, मूर्ख या लालबुझक्कड़ समझा जाता था।

परन्तु सन् १८९८ के नवम्बर मास की एक रात्रि में चिरकाल से सम्मानित इस परमाणु सिद्धान्त का सारा आधार ही धूलिसात् हो गया।

**चमकने वाला तत्व**

मारी स्क्लोदोव्स्का वार्सा के एक उपाध्याय की मेधाविनी कन्या थी। उसके पिता ने उसे शिक्षा प्राप्त करने के लिए पारी (पेरिस) भेजा था। मारी के शिक्षक प्रोफेसर बैकरैल ने उसे अपनी सहायिका बना लिया था। बैकरैल ने कई वर्षों से बोहीमिया से आये हुए यूरेनियम के कुछ टुकड़ों को एक फालतू पड़ी



पियरे और मारी क्यूरी ने रेडियम खोज निकाला (१८९८)

हुई दराज़ में रख छोड़ा था। एक दिन मारी स्क्लोदोव्स्का ने उनमें से कुछ टुकड़े निकाले और उनका उपयोग फोटोग्राफी की

प्लेटों को तोलने के लिए किया। परन्तु जब इन प्लेटों को डैवलप (व्यक्त) किया गया, तो उन पर शिराओं का विचित्र जाल-सा फैला दिखाई पड़ा, मानों उन पर जुगनू चलते रहे हों। इस विषय में कोई सन्देह की गुंजाइश नहीं थी कि यूरेनियम में से कुछ इस प्रकार की किरणें निकल रही थीं, जो तब तक अज्ञात थीं। तब किसी ने इस बात को नहीं समझा था कि यह विकिरण एक ऐसा प्रपंच (अद्भुत वस्तु) था, जो सम्भवतः नैसर्गिक विज्ञान के सारे आधार को ही पलट सकता था।

मारी स्क्लोदोव्स्का (या कहना चाहिए कि मारी क्यूरी, क्योंकि तब उसका विवाह एक भौतिकी वैज्ञानिक पियरे क्यूरी से हो गया था) के सिवाय इस बात को किसी ने नहीं पहचाना।

इन किरणों के रहस्यमय स्रोत को खोज निकालने का दृढ़ संकल्प करके मारी ने प्रौफेसर बैकरैल की सहायिका के रूप में अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। एक रात उसने अपने पति के साथ मिलकर यूरोप के भूगर्भीय मानचित्र की पड़ताल की। यूरेनियम बड़ी मात्रा में कहां मिल सकता है ? खोजते-खोजते उनकी अंगुलियां एक छोटे-से बिन्दु पर आ रुकीं, जो बोहीमिया में जोआकिम्स्थल नगर का द्योतक था। उन्होंने सन्दर्भ ग्रन्थों में उसे खोजा। यह एक छोटा-सा कस्बा था, जो मध्य युग में यूरोप की चांदी की सबसे बड़ी खान था। अब चांदी की खानें समाप्त हो चुकी थीं और वहां केवल कुछ रंग तैयार होते थे, जिनके निर्माण के लिए यूरेनियम पिचब्लैंड उपयोगी था।

क्यूरी दम्पति ने जोआकिम्स्थल के प्रबन्धकों को तुरन्त एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने यह पूछा कि क्या उन्हें १०,०००

किलोग्राम पिचब्लेंड बिना मूल्य मिल सकता है।

उनका यह अनुरोध स्वीकार कर लिया गया। प्रबन्धक को इसमें सन्देह न था कि पारी (पेरिस) में बैठे ये वैज्ञानिक पागल हैं, परन्तु पिचब्लेंड वहां इतनी बड़ी मात्रा में पड़ा था—बहुधा उनके मजदूर फावड़ों से खोद-खोदकर उसे नदी में बहा देते थे—कि उसके कुछ अंश का वहां से हट जाना सन्तोष का ही विषय था। उसे सोडा रखने के खाली ढोलों में भर कर नोजां-स्युर-मार्नें भेज दिया गया, जहां बैरों द रौथशिल ने क्यूरी दम्पति को अपने परीक्षण करने के लिए एक रासायनिक कारखाने का उपयोग करने की अनुमति दे दी थी।

यूरेनियम पिचब्लेंड में छिपे हुए उस तत्व को प्राप्त करने के लिए उस सारे विशाल ढेर का सार निकाला जाना था। सप्ताहों और महीनों तक पियरे और मारी बड़ी-बड़ी बाल्टियों में उसे पानी में डाल कर बड़े-बड़े बांसों से चलाते रहने का घोर परिश्रम करते रहे। जो वस्तु बची, उसे पहले घड़ों में और उसके बाद शीशे के गिलासों की पंक्तियों में भर लिया गया। इस सारी प्रक्रिया के अन्त में उनके पास केवल एक परीक्षा-नली में भरा हुआ थोड़ा-सा, सफेद-सा तरल पदार्थ शेष बचा।

नवम्बर १८९८ की एक रात को प्रयोगशाला के निकट के एक कमरे में एक घड़ी की घंटी बज उठी। यह पियरे और मारी को जगाने के लिए थी, जो काम करते-करते थक कर कुछ देर के लिए एक कामचलाऊ खाट पर सो गये थे।

"उठो, पियरे! तीन बज गये। अब तक उसके स्फटिक बन चुके होंगे।" उनके भगीरथ परिश्रम का विजय-मुहूर्त निकट

ही था। दस हज़ार किलोग्राम यूरेनियम पिचब्लेंड में से एक नये तत्व की बिल्कुल ज़रा-सी मात्रा प्राप्त कर ली गई थी। वे सोच रहे थे कि वह......उनका नया तत्व देखने में कैसा होगा।

उन्होंने प्रयोगशाला का दरवाजा खोला—और उसकी देहली पर रुक कर वे खड़े हो गये। अंधेरे कमरे में एक कोने से एक अद्भुत, नीला-सा, रहस्यमय प्रकाश आ रहा था। यह बहुत ही अद्भुत और लगभग भयावह-सा दृश्य था। मारी ने पियरे के हाथ को धीरे से दबाया।

उसके बाद उन्होंने गैसबत्ती जलाई। वह नीला-सा प्रकाश एकदम लुप्त हो गया। परन्तु जहां वह पहले चमक रहा था, वहां एक छोटी-सी परीक्षा नली थी, जिसमें एक ग्राम के दसवें भाग के बराबर एक हलका सफेद-सा लवण पड़ा था।

उन्होंने इसका नाम 'रेडियम' रखा—चमकने वाला तत्व।

### कंकाल हाथ

जैसा कि मादाम क्यूरी ने पहले ही समझ लिया था, रेडियम की खोज का अर्थ था कि अनेक वैज्ञानिक विश्वास बिल्कुल उलट-पलट हो जायें। भौतिकी-शास्त्रियों और रसायन-शास्त्रियों को एकाएक अपने पांवों के नीचे जमीन खिसकती प्रतीत होने लगी। पदार्थ (भौतिक तत्व) क्या है? ऊर्जा क्या है? ये प्रश्न उन्हें अपने-आप से बिल्कुल नये सिरे से पूछने पड़े। अब परमाणु न तो अपरिवर्तनीय ही रहा था और न वह सूक्ष्मतम कण ही था। कारण यह है कि न केवल रेडियम का अपना अस्तित्व ही तत्वों के नैसर्गिक तत्वान्तरण के कारण, जो करोड़ों

वर्षों से होता आ रहा है, बना है, अपितु यह स्वयं भी विघटित हो जाता है—रेडियम की कितनी ही भी मात्रा क्यों न ली जाये, १६०० वर्ष की अवधि में उसका आधा अंश भौतिक तत्व से विकिरण में, अर्थात् ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। ज्यों-ज्यों मारी और पियरे क्यूरी ने इस बात का अध्ययन किया कि यह विघटन किस प्रकार होता है, त्यों-त्यों उन्होंने परमाणु के आधुनिक सिद्धान्त की आधारशिला स्थापित की।

क्यूरी दम्पति की इस खोज से कुछ वर्ष पहले की बात है कि हेमन्त ऋतु के एक अपराह्न में, जब सन्ध्या होने लगी थी, प्रौफेसर विल्हैल्म कोनराड रूंटजन बावेरिया के वूर्जबर्ग विश्वविद्यालय में अपनी प्रयोगशाला में परीक्षण कर रहा था। मेज़ पर एक कैथोड किरण नली रखी थी, जो पिछले कुछ समय से उसके अध्ययन का विषय बनी हुई थी। इस नली का आविष्कार एक अंग्रेज, सर विलियम क्रुक, ने किया था। यह शीशे का एक गोला था, जिसमें से वायु निकाल ली गई थी। इसमें दोनों सिरों पर धातु की दो पट्टियां उगी हुई थीं, जिनमें से एक कैथोड और दूसरी ऐनोड कहलाती थी; कैथोड को किसी बैटरी के ऋण ध्रुव से और ऐनोड को धन ध्रुव से जोड़ दिया जाता था—और बिजली उस गोले के वायु रहित स्थान में से गुज़रने लगती थी। जब बिजली की धारा को चालू किया जाता था, तो कैथोड दमकने लगता था और उसमें से एक विशेष प्रकार की किरणें निकलने लगती थीं। अनेक वैज्ञानिक उन किरणों के सम्बन्ध में खोज-बीन कर रहे थे। प्रौफेसर रूंटजन भी उसमें से एक था। कोई भी अच्छा नाम न मिल पाने के कारण इन किरणों को

'कैथोड किरण' (ऋणाग्र किरण) ही कहा जाने लगा।

प्रौफेसर रूंटजन ने अपनी इस नली की अनेक दशाओं में रख कर परीक्षा की। उदाहरण के लिए उस दिन अपराह्न में उसने इस नली को एक गत्ते के डिब्बे में बन्द कर दिया। एकाएक उसकी दृष्टि एक कागज के टुकड़े पर पड़ी, जिसके ऊपर कुछ प्रदीप्त (चमकने वाला) लेप लगाया गया था। यह कागज़ उस गत्ते के सन्दूक के पास उसकी काम करने की मेज़ पर पड़ा हुआ था। यह इससे पहले के किसी परीक्षण के लिए लाया गया था और वहीं पड़ा रह गया था। अब वह चमकने लगा था और सन्ध्या के धुंधलके में उसमें से एक हरी-सी चमक निकल रही थी। "आश्चर्य!" प्रौफेसर रूंटजन ने सोचा "जहां चमक है, वहां प्रकाश का कोई स्रोत भी होना चाहिए।" परन्तु वह स्रोत था कहां? जिस डिब्बे में कैथोड किरण नली थी, वह भली प्रकार बन्द था। फिर भी जब उसने कैथोड किरण नली में जाने वाली बिजली की धारा को बन्द कर दिया, तो चमकने वाला कागज़ फिर काला पड़ गया।

प्रौफेसर ने सोचा कि अवश्य ही ये कैथोड किरणें एक प्रकार का 'अदृश्य प्रकाश' हैं। और जहां प्रकाश है, वहां छाया भी होगी ही। उसने अपना हाथ कागज़ के सामने यह देखने के लिए रखा कि उसकी छाया पड़ती है या नहीं—पर तुरन्त ही उसने अपने हाथ को पीछे खींच लिया।

क्या यह उसका भ्रम था? उसे ऐसा लगा। क्योंकि क्षण भर के लिए उसे उस चमकने वाले कागज़ पर हाथ का एक कंकाल दिखाई पड़ा था; उसके अपने ही हाथ की अलौकिक

भयावनी छाया : हड्डियां काली स्पष्ट रेखाओं में दिखाई पड़ रही थीं और मांस और त्वचा उनके आस-पास धूसर से किनारों के रूप में दीख रहे थे।

उसका यह विस्मय का भाव शीघ्र ही एक महान विजय के भाव में परिवर्तित हो गया। संयोग से ही उसने एक नये विलक्षण प्रकार की किरणें खोज निकाली थीं—अदृश्य किरणें, जो ठोस पदार्थों को पार कर सकती थीं; उनकी छाया की घनता उस सामग्री पर निर्भर थी, जो किरणों के मार्ग में पड़ती थी। इस प्रकार इन किरणों के लिए मांस, हड्डियों की अपेक्षा अधिक पारदर्शक था; धातु की अपेक्षा लकड़ी अधिक पारदर्शक थी। ये किरणें मनुष्य को जीवित और मृत वस्तुओं के अन्दर तक देखने में समर्थ बना सकेंगी। ये उस रहस्य को भी प्रकट कर देंगी, जिसे अब तक प्रकृति ने छिपाया हुआ था।

इन किरणों की रहस्यमय प्रकृति के कारण रूंटजन ने इनका नाम 'ऐक्स किरण' रखा। जब कैथोड किरणें किसी भौतिक तत्वीय वस्तु से टकराती हैं, जैसे कि गत्ते का बना हुआ सन्दूक, तो वे 'ऐक्स किरणें' बन जाती हैं। अनेक वर्ष बाद कैम्ब्रिज में कैवेंडिश प्रयोगशाला के एक अंग्रेज वैज्ञानिक जे. जे. थौमसन ने यह पता चलाया कि ये कैथोड किरणें वस्तुतः क्या चीज़ हैं। वे विद्युत् के ऋण कण हैं। उसने उन्हें 'इलैक्ट्रान' नाम दिया।

कैथोड किरण नली के अन्दर और विघटित होते हुए रेडियम परमाणु के अन्दर क्या कुछ हो रहा है, उसका कुछ और स्पष्ट चित्र प्राप्त करने में वैज्ञानिकों को अनेक वर्ष लग

गये। परमाणु जगत् की चित्र खंड पहेली कुछ आकार धारण करने लगी। परमाणु को इस रूप में समझा जाने लगा कि जैसे वह एक प्रकार का छोटा-सा सौरमंडल हो, जिसमें बीच में एक 'सूर्य', नाभिक होता है और उसके चारों ओर कुछ 'ग्रह', इलैक्ट्रान चक्कर लगा रहे होते हैं। नाभिक पदार्थ (भौतिक तत्व) से खूब सघन रूप से भरा होता है, जैसे किसी नृत्यशाला के बीच में लोगों की भीड़ भरी होती है। उस नाभिक में कुछ प्रोटान होते हैं, जो धन विद्युत् आवेश वाले कण होते हैं; कुछ न्यूट्रान होते हैं, जो किसी भी प्रकार के विद्युत् आवेश से रहित कण होते हैं और शायद कुछ मेसान होते हैं, जिनमें धन या ऋण विद्युत् आवेश रहता है और जो नाभिक को इकट्ठा रखने के लिए एक प्रकार के 'गोंद' के रूप में काम करते हैं। इलैक्ट्रानों में ऋण आवेश रहता है और उनका पिंड या भार बिल्कुल नहीं के बराबर होता है। साधारणतया एक परमाणु में उतने ही धन आवेश वाले प्रोटान होते हैं, जितने कि ऋण आवेश वाले इलैक्ट्रान, जिससे उनके आवेश एक दूसरे को बराबर करते रहते हैं—इस प्रकार के परमाणु को हम 'उदासीन' परमाणु कहते हैं। परन्तु यदि किसी परमाणु में इलैक्ट्रानों की संख्या प्रोटानों की संख्या से कम हो, तो वह परमाणु धन आवेश युक्त हो जाता है और यदि इलैक्ट्रानों की संख्या प्रोटानों की संख्या से अधिक हो, तो वह ऋण आवेश से युक्त हो जाता है।

**परमाणु ऊर्जा—नियन्त्रित और अनियन्त्रित**

अब विभिन्न तत्वों में परस्पर अन्तर केवल उनके नाभिक के चारों ओर चक्कर काटने वाले इलैक्ट्रानों की संख्या और उतनी ही संख्या में नाभिक में रखे हुए प्रोटानों की संख्या के कारण होता है। उदाहरण के लिए हाइड्रोजन में, जो सबसे हल्का तत्व है, केवल एक इलैक्ट्रान और एक प्रोटान होता है; और सबसे भारी तत्व यूरेनियम में इन दोनों में से प्रत्येक की संख्या ९२ होती है। इस प्रकार वे मध्यकालीन कीमियागर, जो यह मानते थे कि एक तत्व को दूसरे तत्व में बदलने का कोई न कोई उपाय अवश्य होना चाहिए, बिल्कुल गलती पर नहीं थे। यदि तुम सीसे को सोने में बदलना चाहते हो, तो तुम्हें केवल इतना करना होगा कि सीसे के परमाणु में से, जिसमें कि ८२ इलैक्ट्रान और ८२ प्रोटान होते हैं, तीन इलैक्ट्रान और तीन प्रोटान निकाल कर अलग कर देने होंगे और तब तुम्हारे पास स्वर्ण का परमाणु रह जायेगा, जिसमें केवल ७९ इलैक्ट्रान और ७९ प्रोटान होते हैं। परन्तु यह इलैक्ट्रानों और प्रोटानों को निकाल कर अलग करने की प्रक्रिया उससे प्राप्त होने वाले स्वर्ण की अपेक्षा कहीं अधिक महंगी पड़ेगी।

किसी भी विद्युत् आवेश वाले परमाणु को, अर्थात् जिसमें इलैक्ट्रानों की संख्या प्रोटानों से कम या अधिक हो, 'अयन' कहा जाता है। इस अयन का विद्युत् सन्तुलन विचलित हुआ रहता है। इस प्रकार अयन अनेक विद्युत् प्रपंचों में महत्वपूर्ण भाग लेता है।

विकिरणशीलता—वह प्रक्रिया, जिसके कारण 'अस्थिर'

तत्व रेडियम विघटित होता रहता है—इस तथ्य का पहला संकेत थी कि पदार्थ (भौतिक तत्व) और ऊर्जा एक-दूसरे से उतने भिन्न नहीं हैं, जितना कि वैज्ञानिक लोग अनेक शताब्दियों से मानते आ रहे थे। रेडियम में तो किरणों के रूप में बड़े तीव्र वेग से कण बाहर की ओर निकलते रहते हैं। वह ऊर्जा, जो उन कणों को शक्ति देती है, स्वयं उस परमाणु के एक बहुत छोटे-से अंश के विनाश से उत्पन्न होती है। प्रौफेसर अलबर्ट आइंस्टीन ने अपने सापेक्षता के सिद्धान्त में, जो सन् १९०५ में प्रकाशित हुआ था, यह बात बताई कि पदार्थ (भौतिक तत्व) और ऊर्जा में कोई वास्तविक अन्तर नहीं है और यह कि पदार्थ (भौतिक तत्व) के विनाश के फलस्वरूप विशाल मात्रा में ऊर्जा मुक्त हो जायेगी।

आज हम जानते हैं कि यदि आधी छटांक पदार्थ (भौतिक तत्व) को पूर्णतया नष्ट करके उसे ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सके, तो उससे इतनी शक्ति उत्पन्न होगी जितनी कि किसी बिजलीघर में हमें २८ लाख मन कोयला जलाने से प्राप्त होती है। परन्तु १९०५ में जब आइंस्टीन सन् १८९० के बाद हुई नई खोजों के आधार पर अपने पदार्थ (भौतिक तत्व)—ऊर्जा के निष्कर्ष पर पहुंचा, तो यह सारा विचार इतना विलक्षण जान पड़ा कि अनेक वैज्ञानिकों ने आइंस्टीन के सिद्धान्त पर बड़े प्रबल आक्षेप किये। उस समय इस बात की कोई सम्भावना दिखाई नहीं पड़ती थी कि परमाणु को फाड़ कर और उस आश्चर्यजनक ऊर्जा को मुक्त करके इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप से प्रमाणित किया जा सके।

ऐक्स किरणों और रेडियम के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध तब स्पष्ट हो गया, जब यह पता चला कि रूंटजन की नई किरणें न केवल चिकित्सक को अपने रोगी के शरीर के अन्दर देख पाने में समर्थ बना देती हैं, अपितु वे रोगियों के शरीर की अस्वस्थ कोशिकाओं और संकटास्पद वृद्धियों, जैसे रसौलियों और कैन्सर को नष्ट करने में भी समर्थ हैं; और यह कि निरन्तर अपनी किरणें फेंकता हुआ रेडियम भी यह काम कर सकता है ।

रेडियम के परमाणु में प्रकृति ने वह खटका (पुर्ज़ा) हटा दिया है, जो पदार्थ (भौतिक तत्व) के कणों को एक छल्लेदार कमानी की तरह एक जगह दबाये रखता है और इस प्रकार निबद्ध ऊर्जा स्वतन्त्र होकर किरणों के रूप में निकलने लगती है—अंशतः पदार्थ (भौतिक तत्व) के अत्यन्त छोटे-छोटे कणों के रूप में और अंशतः विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों के रूप में ।

सन् १९३२ में कैम्ब्रिज में कैवेन्डिश प्रयोगशाला में परीक्षणात्मक भौतिकी विज्ञान के प्रौफेसर लार्ड रदरफोर्ड को पहले पहल कृत्रिम रूप से परमाणु को फाड़ने में सफलता मिली। उसने रेडियम की किरणों से निकलने वाले कणों को लिथियम के परमाणुओं के नाभिकों पर टकराया। इन परमाणुओं से भी छोटी 'गोलियों' के आघात से लिथियम के नाभिक टूट गये। फटे हुए नाभिकों में से प्रोटान बहुत प्रचंड वेग से उड़े और नाभिक का बचा हुआ अंश एक अन्य तत्व हीलियम, का परमाणु बन गया। इस प्रकार तत्वों का रूपान्तरण करने में सफलता प्राप्त हो गई। यह बहुत कुछ वैसी ही वस्तु था,

जिसका स्वप्न मध्यकालीन कीमियागर देखा करते थे। इस प्रक्रिया में जो कुछ हुआ, वह यह था कि लिथियम के प्रत्येक नाभिक में से, जिसमें कि तीन प्रोटान होते हैं, रेडियम के कणों की चोट के कारण एक प्रोटान टूट कर अलग हो गया और दो प्रोटान वाला परमाणु शेष रह गया, जो कि हीलियम का परमाणु है। यह वात विल्कुल 'सीधी-सादी' थी।

लगभग एक दर्जन देशों में भौतिकी वैज्ञानिकों ने रदरफोर्ड के परीक्षणों को दुहरा कर देखा और 'नाभिकीय विखंडन' के सम्वन्ध में नये-नये तथ्यों का पता चलाया और भौतिक तत्व को ऊर्जा में रूपान्तरित करने में सफलता पाने के लिए नये-नये उपाय सुझाये। तभी द्वितीय विश्व-युद्ध छिड़ गया और सरकारी गोपनीयता के पर्दे के पीछे मानवीय इतिहास के सबसे भयंकर शस्त्र—परमाणु बम के निर्माण के लिए एक दौड़ सी शुरू हो गई। परमाणु वम ऐसा बम है, जिसमें नाभिकीय विखं-डन इस ढंग से किया जा सकता है कि भयंकर विनाशकारी शक्तियां उन्मुक्त हो जायें।

६ अगस्त १९४५ को सोमवार के दिन इंग्लैंड में लोग यूरोप में युद्ध समाप्त होने के बाद आनन्द से पहली बैंक छुट्टी मना रहे थे। उस दिन एक अमेरिकन विमान ने जापान के एक नगर हीरोशीमा पर एक बम गिराया। यह बम पहला परमाणु बम था, जो २० हजार टन भयंकर विस्फोटकों के बरा-बर शक्तिशाली था। कुछ दिन बाद नागासाकी पर ऐसा ही एक और बम गिराया गया। जापान ने आत्मसमर्पण कर दिया; दूसरा विश्व-युद्ध समाप्त हो गया। इन दो बमों से भयंकर

विनाश और प्राणहानि हुई।

परमाणु बम में यूरेनियम-२३५ के अन्दर—जो 'साधारण' यूरेनियम का, जिसका परमाणु भार २३८ है, 'समस्थानी' (आइसोटोप) है—दो पिंड होते हैं। समस्थानी किसी भी तत्व का एक विशेष प्रकार होता है, जो उससे केवल इस दृष्टि से भिन्न होता है कि उसके नाभिक में न्युट्रानों की संख्या अलग होती है। यूरेनियम-२३५, जो बहुत थोड़ी मात्रा में यूरेनियम-२३८ में भी होता है, कहीं अधिक 'अस्थिर' होता है, अर्थात् यह कहीं अधिक सरलता से विघटित हो जाता है और जब इसकी मात्रा एक विशिष्ट सीमा तक पहुँच जाती है, तब इसके समूचे पिंड में एक अचानक 'शृंखला प्रतिक्रिया' शुरू हो जा सकती है। प्रत्येक न्यूट्रान नाभिक पर चोट करके तीन न्यूट्रानों को मुक्त कर देता है। ये मुक्त हुए न्यूट्रान अन्य नाभिकों पर चोट करते हैं और एक सैकिंड के ज़रा से हिस्से में यूरेनियम का सारा पिंड विघटित हो जाता है और ताप के रूप में प्रचंड ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। यह प्रक्रिया 'अनियन्त्रित शृंखला प्रतिक्रिया' कहलाती है। यह प्रतिक्रिया परमाणु बम में यूरेनियम-२३५ के दो पिंडों को इस प्रकार परस्पर मिलाकर चालू की जाती है कि उनके मिलने से उनकी कुल मात्रा 'संकटास्पद मात्रा' तक पहुँच जाये।

इससे भी कहीं अधिक शक्तिशाली एक और नाभिकीय शस्त्र है और वह है हाइड्रोजन बम। यह एक मनुष्य निर्मित 'सूर्य' है, जिसमें हाइड्रोजन हीलियम के रूप में परिवर्तित की जाती है, जिससे ऊर्जा अत्यधिक ऊष्मा के रूप में मुक्त होती है।

हाइड्रोजन बम में, उसे छोड़ने के लिए फ्यूज़ के रूप में एक साधारण परमाणु बम रखा होता है, जिससे शृंखला प्रतिक्रिया शुरू होती है।

शृंखला प्रतिक्रिया को नियन्त्रित किया जा सकता है, किन्तु यह एक बहुत ही जटिल प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के द्वारा ही हम परमाणु शक्ति को मानव जाति का सबसे अधिक शक्तिशाली सेवक बना सकेंगे।

## परमाणु-चालित बिजलीघर

यह प्रश्न बहुधा पूछा जाता है कि वैज्ञानिक लोग परमाणु भट्ठियों या नाभिकीय अभिक्रियकों की अपेक्षा, जो कि परमाणु से ऊर्जा उत्पन्न करने वाले यन्त्र हैं, परमाणु बम इतनी जल्दी बनाने में कैसे समर्थ हो गये। इसके तीन कारण हैं : संसार में सीमित मात्रा में उपलब्ध होने वाले यूरेनियम-२३५ को पर्याप्त मात्रा में तैयार कर पाने की कठिनाई (और सैनिक अधिकारियों को इस बात के लिए मनाने की कठिनाई कि वे उस यूरेनियम-२३५ का कुछ अंश शांतिपूर्ण उपयोग के लिए वैज्ञानिकों और इंजीनियरों को दे दें); परमाणु भट्ठी की खतरनाक गौण उपजों से छुटकारा पाने की कठिनाई और ऐसे शृंखला अभिक्रियकों के, जिनको चलाना बिल्कुल निरापद रहे, अभिकल्प तैयार करने की कठिनाई।

इनमें से तीसरी समस्या पहली दो की अपेक्षा कहीं अधिक दुःसाध्य थी। कारण यह है कि इस काम में सदा एक अनियन्त्रित शृंखला प्रतिक्रिया अर्थात् विस्फोट का खतरा सदा बना

रहता है। यह मुख्य रूप से एक ऐसे भरोसे के 'मन्दक' का उपयोग करने की समस्या है, जो इस परमाणु भट्ठी की, जिसमें यूरेनियम के परमाणुओं पर न्युट्रानों की बमबारी के फलस्वरूप भीषण ऊष्मा उत्पन्न होती है, शृंखला प्रतिक्रिया को नियन्त्रण में रख सके। यह मन्दक—उदाहरण के लिए ग्रेफाइट (कार्बन) या 'भारी जल' (ऐसा पानी, जिसमें हाइड्रोजन का एक समस्थानी (आइसोटोप) रहता है)—नाभिकीय विखंडन पर ब्रेक का-सा काम करता है। इस भट्ठी द्वारा उत्पन्न ऊष्मा को एक 'शीतक' (उदाहरण के लिए कार्बन डाईऑक्साइड गैस) द्वारा अभिक्रियक में से हटा लिया जाता है और उसका उपयोग परम्परागत ढंग की भाप से चलने वाली टर्बाइन को चलाने के लिए किया जाता है। इस टर्बाइन का सम्बन्ध एक बिजली उत्पन्न करने वाले यन्त्र से जुड़ा रहता है, जैसा कि अध्याय २ के अन्त में बताया गया है। परमाणु भट्ठी में जब यूरेनियम के परमाणु पर न्यूट्रान द्वारा चोट की जाती है, तो वह 'फट जाता है'; इसके परिणामस्वरूप यूरेनियम के उस परमाणु में से दो या दो से अधिक न्यूट्रान और मुक्त हो जाते हैं, जो यूरेनियम के अन्य परमाणुओं को फाड़ देते हैं। उनमें से और न्यूट्रान निकलते हैं और वे अन्य यूरेनियम परमाणुओं को फाड़ते हैं। इस शृंखला प्रतिक्रिया को मन्दक द्वारा धीमा किया जाता है। यह मन्दक इतने न्यूट्रानों को निगल लेता है कि उससे विस्फोट नहीं होने पाता। इसलिए सफलता बहुत कुछ मन्दक और शीतक की कार्यक्षमता पर निर्भर है।

खतरनाक गौण उपजों से छुटकारा पाने की आवश्यकता

के कारण यह वांछनीय हो जाता है कि परमाणु भट्ठियों को 'आत्मसम्पूर्ण' बनाया जाये, जिससे कोई विकिरणशील (रेडियम धर्मी) सामग्री परमाणु भट्ठी से बाहर आये ही नहीं। यह काम काफी कठिन है और इसीसे स्पष्ट है कि परमाणु-चालित विजलीघरों के अभिकल्प तैयार करने में इतना समय क्यों लगा। कारण यह है कि भाप की टर्बाइनों को चलाने के काम आया हुआ पानी तक भी परमाणु भट्ठी में से गुजरने के बाद विकिरणशील हो जायेगा और यदि उसे टर्बाइनों में से निकलने के बाद बाहर, उदाहरण के लिए किसी नदी में वहा दिया जाये, तो वह उस सारे प्रदेश को 'दूषित कर' देगा। इसलिए इसे एक बन्द घेरे में ही चलाते रहना आवश्यक है; और परमाणु भट्ठी को भली-भांति आड़ से ढक कर रखना आवश्यक है, जिससे उसकी विकिरणशीलता बाहर के लोगों को क्षति न पहुंचाये। इस प्रकार के बिजलीघर में काम करने वाले इंजीनियरों की सुरक्षा के लिए भी कठोर उपाय बरतने आवश्यक हैं। बिजली उत्पन्न करने वाली परमाणु भट्ठी का निर्माण शुरू करने से पहले इन सब समस्याओं का हल कर लिया जाना आवश्यक था।

संसार में पहला परमाणु-चालित बिजलीघर कैल्डर हौल था। इसका उद्घाटन कम्बरलैंड में अक्टूबर १९५६ में हुआ था। इसके बाद तो ब्रिटेन, अमेरिका और रूस में अनेक परमाणु-चालित बिजलीघर बन गये हैं। इस शताब्दी का अन्त होते-होते अधिकांश बड़े जहाज परमाणु-शक्ति से चला करेंगे। परन्तु विमानों और मोटरकारों में परमाणु भट्ठियों का उपयोग होने की सम्भावना नहीं है, क्योंकि परमाणु भट्ठी का भार और

लागत बहुत अधिक होती है और उससे विकिरणशीलता के कारण खतरा बहुत रहता है।

अन्य सामग्रियां जिस सरलता से 'दूषित हो जाती हैं,' अर्थात् विकिरणशील (रेडियम धर्मी) वन जाती हैं, उससे एक बड़ा लाभ भी है। इस प्रकार की परमाणु भट्ठी उससे कहीं अधिक 'ईंधन' तैयार कर सकती है, जितना कि उसमें जलता है। 'उत्पादक' अभिक्रियक में—इस प्रकार की परमाणु भट्ठी को यही नाम दिया गया है—न्यूट्रानों की अविराम बमबारी द्वारा एक कृत्रिम तत्व, जैसे कि प्लूटोनियम, तैयार किया जा सकता है। फिर इस विकिरणशील तत्व का उपयोग एक नई परमाणु भट्ठी को चालू करने के लिए किया जा सकता है। साधारण रासायनिक पदार्थों को भी रोगों की चिकित्सा के लिए और प्राणिशास्त्रीय और औद्योगिक अनुसन्धान के लिए विकिरणशील बनाया जा सकता है। इन नये विकिरणशील रासायनिक पदार्थों का उपयोग स्वयं रेडियम के समान किया जा सकता है या सामान्यतया अदृश्य प्रक्रियाओं की खोज के लिए —चाहे वह मनुष्य शरीर के अन्दर जा रही औषधि के मार्ग को जानने के लिए हो, या मिट्टी के अन्दर चल रहे किसी झींगुर का मार्ग पता करने के लिए हो—किया जा सकता है।

इस प्रकार रेडियम की खोज ने हमें परमाणु युग के आरम्भ पर ला खड़ा किया है। अब यह निश्चय हम सबको मिल कर करना है कि परमाणु शक्ति का उपयोग सभ्यता के विनाश के लिए किया जाये, अथवा मानव जाति के लिए शान्ति और समृद्धि के एक स्वर्णयुग के सृजन के लिए किया जाये।

अध्याय ९

# इलैक्ट्रान जगत्

नवम्बर १८८७ में एक दिन जर्मनवासी भौतिकी वैज्ञानिक हेनरिख हट्र्ज़ ने, जिसकी आयु उस समय ३० वर्ष थी, एक परीक्षण किया, जिसने एक विशाल नये विषय का द्वार खोल दिया और वह था—वेतार संचारण।

हट्र्ज़ एक शान्त और आडम्बरभीरु वैज्ञानिक था। उसका कार्यकाल बहुत छोटा और बड़ी घटनाओं से शून्य रहा। उसने अपना विशेष कार्यक्षेत्र वैद्युतिक प्रपंच के अध्ययन को चुना था। उस समय विद्युत् के विषय में दो सिद्धान्त थे : एक का कथन था कि विद्युत् पदार्थ (भौतिक तत्व) के बहुत छोटे-छोटे आवेशयुक्त कणों की गतिविधि है, दूसरा सिद्धान्त यह था कि यह प्रकाश की भांति एक तरंग-गति है। हट्र्ज़ यह सिद्ध करना चाहता था कि ये दोनों सिद्धान्त वस्तुतः एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं और यह कि विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें खूब मज़े से बहुत सूक्ष्म कणों की गति से मिलाई जा सकती हैं।

उसका निर्णायक परीक्षण बहुत सरल और सूझ-बूझ से युक्त था। कार्ल्सरूह के पोलीटैकनीक में अपनी प्रयोगशाला के एक कोने में उसने एक विद्युत् प्रेरक (इंडक्शन मैशीन) यन्त्र लगा दिया; दूसरे कोने में उसने वह यन्त्र लगाया जिसका नाम

उसने 'अनुनादक' (रेजोनेटर) रखा था; यह एक तार का वलय (घेरा) था, जो एक जगह से टूटा हुआ था; इस टूटी जगह के दोनों सिरों पर दो धातु के छोटे-छोटे गोले लगे हुए थे और उनके बीच का अन्तर एक इंच का कुछ अंश भर था। विद्युत् उत्पन्न करने के यन्त्र में असाधारण रूप से बड़ी-बड़ी धातु की प्लेटें लगी थीं। उस यन्त्र द्वारा उत्पन्न की जाने वाली विद्युत्चुम्बकीय तरंगों की आवृत्ति (बारम्बारिकता) प्रति सैकिंड होने वाले दोलनों को बढ़ा देती थी। इन दो यन्त्रों के बीच में वायु के सिवाय और कुछ नहीं था।

हट्ज़ं ने विद्युत् प्रेरक यन्त्र को चलाना शुरू किया और यह देख कर उसे बहुत सन्तोष हुआ कि उसका अनुमान सही था, क्योंकि प्रयोगशाला के दूसरे सिरे पर रखे यन्त्र के धातु के गोलों के बीच का व्यवधान अनेक छोटी-छोटी चिनगारियों से भर उठा। इस प्रकार हट्ज़ं ने यह सिद्ध कर दिखाया कि वे वस्तुतः विद्युत् चुम्बकीय तरंगें ही थीं, जो दोलक में से निकल कर सब दिशाओं में फैल रही थीं और जिन्हें फिर ग्रहण किया जा सकता था और दृश्य बनाया जा सकता था।

यह पहला अवसर था, जबकि विद्युत् चुम्बकीय तरंगें जान-बूझकर उत्पन्न की गईं और फिर ग्रहण कर ली गईं। वस्तुतः हट्ज़ं ने सबसे पहले बेतार पारेषक यन्त्र और ग्रहण यन्त्र का आविष्कार किया और उन्हें बनाया। परन्तु क्योंकि वह वैज्ञानिक था, इसलिए उसने अपने यन्त्रों से कुछ 'व्यावहारिक' वस्तु बनाने का प्रयास नहीं किया। अगले सात वर्षों तक वह इन तरंगों के सम्बन्ध में, जिनका कि अस्तित्व उसने

प्रमाणित कर दिया था, आधारभूत कार्य करता रहा। उसने सिद्ध कर दिया कि ये तरंगें ठीक दृश्यमान प्रकाश की भांति प्रतिक्षिप्त और परावर्तित की जा सकती हैं; ये खाली आकाश में प्रकाश के वेग से गति करती हैं और यह कि जो वैज्ञानिक यह मानते थे कि विद्युत् और प्रकाश सारतः एक ही वस्तु हैं, वे ठीक थे; ये दोनों तत्व विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें ही हैं, और उनमें एक-दूसरे से केवल इतना अन्तर है कि उनकी तरंग-लम्बाइयां अलग-अलग हैं।

**गुग्लियैल्मो ने घन्टी बजाई**

दिसम्बर १८९४ में एक बीस-वर्षीय विद्यार्थी ने, जिसका नाम गुग्लियैल्मो मार्कोनी था, अपने परीक्षणों में पहली महान् सफलता प्राप्त की। उसके सम्पन्न माता-पिता बोलोना के निकट एक बड़ी कोठी 'विला ग्रिफोन' में रहते थे। वहीं एक कमरे में गुग्लियैल्मो कई महीनों से अपने इन परीक्षणों में जुटा था। एक रात की बात है कि उसने अपनी माता को, जो सो चुकी थी, जगाया और उससे अपनी प्रयोगशाला में चलने को कहा। वहां वह उसे एक महत्वपूर्ण वस्तु दिखाना चाहता था।

सीनोरा मार्कोनी कुछ बड़बड़ाई जरूर, किन्तु वह अपने पुत्र के साथ चली गई। उस कमरे में पहुंच कर गुग्लियैल्मो ने उसे एक बिजली की घंटी को ध्यान से देखने को कहा, जिसे उसने एक मेज़ पर कुछ रहस्यमय उपकरणों के बीच में लगा रखा था। तब वह स्वयं कमरे के दूसरे कोने में गया और वहां

जाकर उसने एक मोर्स कुंजी को दबाया।

चिनगारियों की चटचट हुई और बारह फुट दूर रखी हुई वह घंटी बजने लगी।

उस नींद और ऊंघ में सीनोरा मार्कोनी जितना उत्साह दिखा सकती थी, उतना उसने दिखाया, परन्तु यह बात वह नहीं समझ सकी कि क्या बिजली की इस घंटी का बजाना सचमुच इतनी बड़ी चीज़ थी कि इसके लिए उसकी रात की नींद तोड़ी जाये। यह बात उसे बाद में ही समझ आई कि उस समय उसने बेतार द्वारा संकेतों का सबसे पहला पारेषण देखा था।

गुग्लियैल्मो मर्कोनी का अगला कदम यह था कि बेतार के संकेतों के लिए एक दूरलेखी (टेलीग्राफिक) ग्रहण यन्त्र तैयार किया जाये। अपने छोटे भाई अलफोंजो की सहायता से उसने अपने संकेतों की अभिसीमा बढ़ा कर अपनी कोठी के बाग के आर-पार तक कर ली। पारेषक यन्त्र घर में था और ग्रहण यन्त्र एक छोटी-सी पहाड़ी के दूसरी ओर रखा गया था। अलफोंजो को ग्रहण यन्त्र के पास खड़ा किया गया था। जब संकेत यथोचित रीति से आने लगे, तो वह पहाड़ी के ऊपर चढ़ गया और रैड इंडियनों का एक नृत्य करने लगा, जिससे गुग्लियैल्मो को पता चल गया कि उसका यन्त्र सचमुच काम कर रहा है।

कुछ मास बाद गुग्लियैल्मो मार्कोनी जहाज पर सवार होकर इंग्लैंड के लिए चल पड़ा। इंग्लैंड को उसके आविष्कार में सबसे अधिक रुचि होनी ही थी। श्री प्रीस (जो बाद में सर विलियम प्रीस बन गया), जो प्रधान डाकघर के तार

विभाग में मुख्य इंजीनियर था, इंग्लैंड के समुद्र तट के चारों ओर रहने वाले प्रकाशपोतों के साथ संदेशों के आदान-प्रदान के लिए कोई नया साधन खोजने के लिए प्रयत्नशील था और वह इस इटलीवासी युवक के आविष्कार की परख करने के लिए उत्सुक था।

**अतलान्तक पट गया**

संसार का पहला बेतार दूरलेखी केन्द्र (तारघर) मई १८९७ में कार्डिफ के निकट लेवरनेक पौइंट में स्थापित किया गया, जहां मार्कोनी ने अपना १०० फुट ऊंचा एरियल का खम्भा लगवाया। ग्रहण यन्त्र वहां से तीन मील दूर ब्रिस्टल चैनल में फ्लेट होल्म के एक छोटे-से द्वीप में प्रकाशस्तम्भ के पास एक सायबान में रखा गया था। कर्णभाष (ईयरफोन) यन्त्रों में, जिनसे मार्कोनी और प्रीस पारेषक यन्त्र से भेजे गये बिन्दु और रेखा के संकेतों को प्राप्त करने की आशा कर रहे थे, पहले दिन एक भी संकेत सुनाई नहीं पड़ा। मार्कोनी ने तनिक भी विचलित हुए बिना कहा कि ग्रहण यन्त्र के लिए और ऊंचा एरियल लगाना होगा। एरियल ऊंचा कर दिया गया और तब दूसरे दिन पहले-पहल अस्पष्ट से संकेत कर्ण-भाष यन्त्रों में सुनाई पड़े: तीन बिन्दु और एक रेखा, जो मोर्स कूट के अनुसार रोमन लिपि के 'वी' अक्षर के संकेत थे।

मार्कोनी मुड़ा और उसने इंजीनियरों से मुस्कराते हुए कहा: "यह लो मैं कहता था न!"—मानों यह संसार की सबसे मामूली बात हो।

२४ घंटे के अन्दर सारे यूरोप में मार्कोनी की धूम मच गई। मानव जाति का एक चिरप्राचीन स्वप्न, आकाश में तत्काल संचारण का स्वप्न, सत्य हो गया था और अब इस विषय में कोई सन्देह नहीं रहा था कि बहुत थोड़े समय में बेतार दूर-लेखन क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित कर देगा, वह भी विशेष रूप से समुद्रों में। पहली बार अब यह सम्भव दिखाई पड़ने लगा था कि समुद्र में चल रहे जहाजों को तथा उन जहाजों से सन्देश भेजे जा सकते हैं।

दिन-रात परीक्षण करके मार्कोनी ने अपने उपकरणों द्वारा तय की जाने वाली दूरियों को आश्चर्यजनक तेज़ी से बढ़ाया। पहली परख के एक सप्ताह बाद ही वह ६ मील दूर तक संकेत भेज पाने में सफल हुआ। सन् १८६८ की ग्रीष्म ऋतु में इंग्लैंड का युवराज वाइट द्वीप के पास अपने छोटे से जहाज पर बीमार पड़ गया। उन दिनों रानी विक्टोरिया उसी द्वीप में औस्बोर्न हाउस में रह रही थी। मार्कोनी ने इन दोनों स्थानों का सम्बन्ध बेतार द्वारा जोड़ने का प्रस्ताव किया, जिससे रानी को अपने पुत्र के स्वास्थ्य की प्रगति के सम्बन्ध में निरन्तर सूचना मिलती रहे। सोलह दिन तक यह संचार अटूट और निर्विघ्न बनाये रखा गया और दोनों दिशाओं में १५० तार भेजे गये।

१८६६ के मार्च मास में बेतार दूर-लेखन द्वारा पहली बार मनुष्यों के प्राण बचाये गये। उस समय तक कुछ अंग्रेजी जहाजों में मार्कोनी के पारेषक यन्त्र लगाये जा चुके थे। उनमें से एक जहाज ने, जो एक गश्ती जहाज था, संयोग से एक

स्टीमर को गुडविन सैन्ड्स में रेत में फंसे देखा और उसने वेतार द्वारा फोरलैंड के प्रकाश स्तम्भ को इसकी सूचना दे दी। इसके फलस्वरूप तुरन्त सहायता भेज दी गई और लोगों के प्राण वच गये। इसके कुछ मास बाद ब्रिटिश नौसेना ने अपना नौ-सैनिक अभ्यास इस प्रकार किया, कि उसमें आदेश ७५ मील दूर से वेतार द्वारा भेजे गये थे और उसके वाद इंग्लैंड और फ्रांस के बीच समाचार पत्रों के तार बेतार द्वारा आने-जाने लगे।

निरन्तर परीक्षण करते-करते तीन वर्ष से भी कम समय में मार्कोनी ने अपने पारेषक का क्षेत्र पचास गुने से भी अधिक कर लिया था। परन्तु सबसे वड़ा कदम अभी उठाया जाना वाकी था।

१२ दिसम्बर १६०१ के दिन मार्कोनी और उसके कुछ सहायक न्यूफाउंडलैंड में सेन्ट जौन के गिरजाघर के निकट एक प्राचीन, लकड़ी से वनी कुटिया में वैठे थे। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। कुटिया को गर्म करने का भी कोई प्रबन्ध न था। दीवारों की दरारों में से वायु अन्दर घुसी चली आ रही थी और छत में बन गये छेदों में से वर्षा का पानी चू रहा था। थोड़े से कोको और व्हिस्की की एक वोतल के सिवाय और कोई खाद्य सामग्री भी वहां नहीं थी। परन्तु इस बात की उन्हें क्या परवाह थी। उस दिन एक बहुत ही महत्वपूर्ण समस्या का समाधान होना था और एक बहुत ही बड़े प्रश्न का उत्तर दिया जाना था। वह यह था : क्या विद्युत्-चुम्वकीय तरंगें आकाश में बिल्कुल सीधी जाती हैं, जैसा कि कुछ भौतिकी शास्त्री मानते थे, या वे पृथ्वी के घुमाव के अनुसार मुड़ती जाती हैं ?

यदि इन तरंगों का मार्ग बिल्कुल सीधा होता हो, तो वे पृथ्वी को छोड़ कर दूर निकल जायेंगी और उस दशा में इस बात की कोई आशा नहीं थी कि एक महाद्वीप का सम्बन्ध बेतार द्वारा दूसरे महाद्वीप से जोड़ा जा सके। स्वयं मार्कोनी को भी इस सम्बन्ध में संशय था। परन्तु सब कुछ आज के इस दिन पर निर्भर था। पूर्वी अमेरिका के समय के अनुसार दोपहर और तीन बजे के बीच कौर्नवाल में पोल्ढू में स्थित उसका पारेषक अपनी पूरी पारेषण शक्ति से 'ऐस' अक्षर के संकेत, तीन बिन्दु भेजेगा।

दोपहर के समय मार्कोनी ने अपना कर्णभाष यन्त्र कानों पर लगा लिया—और असंदिग्ध रूप से उसे आवाज़ सुनाई पड़ने लगी। टिक टिक टिक···टिक टिक टिक। ये तीन बिन्दुओं के संकेत पोल्ढू से आ रहे थे। ये तरंगें अतलांतक को पार करके आ रही थीं।

## वायु में संगीत

३५ वर्ष की छोटी-सी आयु में मार्कोनी को भौतिकी विज्ञान के लिए नोबल पुरस्कार मिला। परन्तु उसे यशस्वी होने का दंड भुगतना पड़ा। उसकी सफलता के कारण बहुत से लोग उससे ईर्ष्या और द्वेष करने लगे। उन्होंने उस पर यह आरोप लगाया कि वह सारे संसार में अपना इस प्रकार का एकाधिकार स्थापित करने का यत्न कर रहा है, जिससे प्रत्येक जहाज और समुद्र तटवर्ती स्टेशन को मार्कोनी कम्पनी का बनाया हुआ बेतार यन्त्र रखना ही पड़े—परन्तु यह आरोप

सत्य नहीं था, क्योंकि उस समय तक ऐसी अनेक कम्पनियां बन चुकी थीं, जो अन्य देशों में बेतार के उपकरण बना रही थीं। जिसे 'मार्कोनी परिवाद' (गोलमाल) नाम दिया गया था, उसके बीच में ही 'टिटैनिक' की भयानक दुर्घटना का समाचार मिला। यह विशाल यात्री-वाहक जहाज १९१२ के अप्रैल मास में अपनी पहली ही यात्रा में एक हिम शैल से टकरा गया था। इस दुर्घटना में १५०० व्यक्तियों ने अपने प्राण गंवाये; परन्तु सात सौ व्यक्ति बचा लिये गये। इसका श्रेय बेतार परिचालक को था, जिसने अपने संकट-संदेश भेज कर अन्य जहाजों को दुर्घटना के स्थल की ओर भेज दिया। टिटैनिक के डूबने के सम्बन्ध में न्यूयार्क में जो जांच हुई, उसमें मार्कोनी उपस्थित था और सभी साक्षियों ने उस जहाज़ के डूबने की घटना में बेतार दूर-लेखन द्वारा निष्पन्न किये गये कार्य के महत्व पर खूब जोर दिया।

एक वर्ष बाद संचार के इस नये साधन की सहायता से पहली बार अपराधियों को गिरफ्तार किया गया। एक दम्पति, जिन पर हत्या का सन्देह था, लिवरपूल से कनाडा जाने वाले एक जहाज पर चढ़ पाने में सफल हो गये। परन्तु जहाज के कप्तान को उन पर सन्देह हो गया और उसने स्काटलैंड यार्ड को बेतार द्वारा इसकी सूचना दे दी। एक जासूस एक और तीव्रगामी नौका पर चढ़ कर कनाडा पहुंचा और जब वे दोनों कनाडा में जहाज से उतरे, तो हथकड़ियाँ उनके लिए पहले से ही प्रतीक्षा कर रही थीं।

सन् १९१५ में मार्कोनी ने बेतार दूर-भाषण—रेडियो

—के सम्बन्ध में योजनापूर्वक परीक्षण प्रारम्भ किये और १९२० के प्रारम्भ में उसने अपने मित्रों को अपनी नौका 'ऐलैत्रा' पर एक भोज में निमन्त्रित किया। वहां उन्होंने उस संगीत के साथ नृत्य किया, जो लन्दन से प्रसारित किया जा रहा था। उसके कुछ ही समय बाद वह लिस्बन से 'ऐलैत्रा' तक, जो उस समय अतलांतक में ३०० मील दूर चल रही थी, दूरभाष (टेलीफोन) से वार्तालाप भेज पाने में समर्थ हुआ। उसके कुछ मास बाद २१ दिसम्बर १९२० से पिट्सबर्ग, पा० में सर्वप्रथम नियमित प्रसार केन्द्र '८ जैड जैड' ने अपना कार्य शुरू किया। इस केन्द्र का परिचालन वैस्टर्न इलैक्ट्रिक कम्पनी कर रही थी और इसके लिए धन व्यापारिक विज्ञापनों से प्राप्त होता था।

बेतार दूर-लेखन का आरम्भ हो जाने के बाद भी प्रसारण शुरू करने के लिए बीस वर्ष तक क्यों प्रतीक्षा करनी पड़ी, इसका कारण ठीक वही है, जिससे दूर-लेखन शुरू हो जाने के बाद भी दूर-भाषण शुरू होने में इतना विलम्ब लगा। पारेषित किये जाने वाले मोर्स संकेतों के अनुसार सीधे-सादे विद्युत् परिपथ को खोलना और बन्द करना वाणी या संगीत के जटिल और सूक्ष्म अधिमिश्रणों (घट-बढ़) को विद्युतीय आवेगों में रूपान्तरित कर पाने की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन है। बैल ने यह खोज की थी कि इस अधिमिश्रण के लिए एक स्थिर और अव्याहत धारा की आवश्यकता है, जो माइक्रोफोन से आने वाले आवेगों के अनुसार एक चुम्बक द्वारा अधिमिश्रित होती हो। इसके लिए तकनीक वैज्ञानिकों को एक

अंग्रेज भौतिकी वैज्ञानिक सर एम्ब्रोज फ्लेमिंग द्वारा एक थर्मियोनिक वाल्व के आविष्कार की प्रतीक्षा करनी पड़ी और उसके बाद ही वे बेतार दूर-भाषण की व्यावहारिक प्रणाली का विकास कर सके।

फ्लेमिंग का वाल्व एक सीधी-सादी वायुरहित नली थी, जिसके अन्दर थोड़ी-सी तार लगी होती है। इस तार को बिजली से इतना गर्म किया जा सकता है कि वह दमकने लगे और उसमें से इलैक्ट्रानों की एक धारा निकलने लगे। बिजली की धारा की वोल्ट-मात्रा में, जो कि उस वाल्व में पहुंचती थी, होने वाले सूक्ष्म परिवर्तन उस वाल्व में निकलने वाली इलैक्ट्रानों की धारा में घट-बढ़ के रूप में दिखाई पड़ने लगते थे। अमेरिकन आविष्कारक ली डि फौरेस्ट ने इन इलैक्ट्रानों के मार्ग में एक तार की जाली का पर्दा या ग्रिड रख दिया, जिससे वाल्व में से गुजरने वाली बिजली के प्रवाह को नियन्त्रित किया जा सके।

अब, यह वह महत्वपूर्ण उपकरण था, जिसके द्वारा पारेषक यन्त्र में अधिमिश्रण (घट-बढ़) उत्पन्न किये जा सकते हैं और जिसके द्वारा ग्रहण यन्त्र में उन अधिमिश्रणों को फिर पकड़ा जा सकता है और साथ ही जिसके द्वारा आकाश में विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों के रूप में आने वाले दुर्बल आवेगों को प्रवर्धित किया जा सकता है। रेडियो पारेषक एक-सी आवृत्ति की एक 'वाहक तरंग' निरन्तर फेंकता रहता है। यह वाहक-तरंग माइक्रोफोन से आने वाले विद्युतीय आवेगों से अधिमिश्रित हो जाती है। ग्रहण-यन्त्र को वाहक तरंग पर मिलाया

जाता है और उससे प्राप्त होने वाले आवेगों को पहले प्रवर्धित किया जाता है, और फिर उन्हें एक लाउड-स्पीकर में से गुज़ारा जाता है।

परन्तु थर्मियोनिक वाल्वों का किसी न किसी रूप में अन्य अनेक प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जा सकता है। क्योंकि इन वाल्वों में से इलैक्ट्रान निकलते हैं, इसलिए जहां-जहां इन वाल्वों का प्रयोग होता है, वह सारा क्षेत्र इलैक्ट्रानिकी विज्ञान कहलाता है—रेडियो तो इस इलैक्ट्रान विज्ञान का केवल आरम्भ ही था।

इंग्लैंड यूरोप का पहला देश था, जहां रेडियो प्रसारण प्रारम्भ हुआ। १४ फरवरी १९२२ को मार्कोनी कम्पनी ने चैम्सफोर्ड के निकट अपना परीक्षणात्मक केन्द्र चालू किया और उसी वर्ष नवम्बर मास में ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कार्पोरेशन (बी० बी० सी०) ने लन्दन से अपना नियमित दैनिक कार्य-क्रम आरम्भ किया। हमारे काल के मानव-जीवन की एक सबसे बड़ी क्रान्ति शुरू हो गई थी।

गुग्लियैल्मो मार्कोनी बहुत दिन जीवित रहा और उसने उस महान परिवर्तन को अपनी आंखों से देखा, जिसे लाने में उसका इतना बड़ा हाथ रहा था। और जब सन् १९३७ में उसका देहान्त हुआ, उस समय एक और विकास, जो किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं था, प्रारम्भ हो चुका था—यह था टेलीविजन का विकास।

**जादू का दर्पण**

पौल निपकौ पश्चिमी प्रशिया में एक छोटे-से नगर न्यूस्टैड में छठी कक्षा में पढ़ने वाला एक बालक था। सन् १८८० के लगभग एक दिन उसके विज्ञान के शिक्षक ने कक्षा में एक नये तकनीकी चमत्कार दूरभाष (टेलीफोन) के सम्बन्ध में बहुत कुछ बतलाया। पौल निपकौ उसे सुनकर मुग्ध-सा हो गया। पौल और उसके मित्र फ्रिट्ज़ ने यह निश्चय किया कि एक दूरभाष यन्त्र स्वयं तैयार किया जाये। परन्तु कैसे? उन्होंने छात्रोचित कौशल से काम लिया। किसी प्रकार वे डाकघर से न्यूस्टैड नगर के एकमात्र बहुमूल्य दूरभाष यन्त्र को केवल एक रात के लिए मांग लाने में सफल हो गये।

उस सारी रात उन्होंने एक झपकी भी नहीं ली। उन्होंने उस दूरभाष यन्त्र के सब हिस्सों को अलग-अलग खोल डाला; उसके प्रत्येक हिस्से की नकल कर ली (माइक्रोफोन उन्होंने छोटी-छोटी कीलों से बना लिया, क्योंकि उनके पास कार्बन की गुटिकाएँ नहीं थीं) और फिर सारे यन्त्र को ज्यों का त्यों जोड़ दिया। अगले दिन प्रातःकाल दूरभाष यन्त्र डाकघर में बिल्कुल ठीक हालत में लौटा दिया गया और उधर उन दोनों बालकों के पास उनका अपना यन्त्र रह गया। और उन्होंने पौल के घर से फ्रिट्ज़ के घर तक दूरभाष यन्त्र की अपनी ही तार लगा ली। वह यन्त्र सचमुच ही ठीक काम करता था। एक दिन पौल ने अपने मित्र से कहा : "फ्रिट्ज़, यह कितना अच्छा हो कि हम दोनों बिजली की सहायता से न केवल एक दूसरे से बात ही करें, अपितु साथ-ही-साथ एक दूसरे को देख भी सकें।"

उस क्षण से पौल निपकौ पर इस विचार का भूत-सा सवार हो गया। वह विश्वविद्यालय की शिक्षा पाने के लिए बर्लिन गया। वहां भी वह सारे समय यही सोचता रहता था कि जिसे वह 'बिजली की दूरबीन' कहता था, उसे कैसे तैयार किया जाये—मानवीय आंख के क्षेत्र को बिजली द्वारा किस प्रकार और विस्तृत किया जाये। यह परियों की कहानियों के जादू के दर्पण की सी कल्पना थी; जैसे 'स्नोव्हाइट' की कहानी में दुष्ट रानी के पास एक ऐसा ही दर्पण था…।"

यह समस्या उसे जिस रूप में दिखाई पड़ती थी, वह प्रकाश को विद्युतीय आवेगों में रूपान्तरित करने की समस्या थी। एक दिन उसने एक तत्व सैलैनियम के विषय में पढ़ा, जिसकी खोज एक स्वीडन निवासी वैज्ञानिक बर्ज़ेलियस ने सन् १८१७ में की थी। सन् १८७३ में समुद्री तारों के एक इंजीनियर ने, जिसका नाम मे था, इस बात पर ध्यान दिया कि आयरलैंड में वैलैंशिया बन्दरगाह में अतलांतक के पार जाने वाले तार के केन्द्र में कुछ सैलैनियम की छड़ें प्रतिरोधक के रूप में प्रयुक्त की जा रही थीं। जब सूर्य दिन में चमक रहा होता था, तब उनमें बिजली की धारा रात की अपेक्षा कहीं अधिक सरलता से गुज़रती थी। निपकौ ने सोचा कि उसकी समस्या का समाधान इसी मार्ग से हो सकता है। सन् १८८३ में क्रिसमस की शाम को वह क्रिसमस वृक्ष के नीचे बैठा हुआ था, उस समय उसे बिल्कुल सीधे-सादे ढंग से एक विचार सूझ गया—यह टेलीविजन का आधारभूत विचार था: किसी दृश्य को विद्युत द्वारा किस प्रकार पारेषित किया जा सकता है।

'निपकौ चकत्ती' (इस आविष्कार का यही नाम पड़ गया) मामूली गत्ते या धातु की बनी हुई चकत्ती थी, जिसमें चकत्ती के बाहरी छोर के निकट छोटे-छोटे छेद सर्पिल आकृति में बनाये गये थे। निपकौ ने इस बात की बिल्कुल स्पष्ट रूप से कल्पना कर ली थी कि चित्रों का पारेषण करने के लिए इस चकत्ती का उपयोग किस प्रकार किया जायेगा। एक विशेष प्रकार का कैमरा उस दृश्य या वस्तु के सामने, जिसे पारेषित किया जाना है, रखा जायेगा और यह चकत्ती उसके अन्दर एक गति-दाता (मोटर) द्वारा तेज़ी से घुमाई जायेगी। एक ज़ोरदार बत्ती घूमती हुई चकत्ती के छेदों में से प्रकाश की अंशु उस वस्तु या दृश्य पर फेंकती है; इस प्रकार उस वस्तु या दृश्य का अंशेक्षण (स्कैनिंग) कर लिया जाता है, अर्थात् उसे अनेक अपेक्षाकृत चमकीले और अपेक्षाकृत धुंधले बिन्दुओं के रूप में बांट लिया जाता है। छेदों की सर्पिल व्यवस्था इस प्रकार होती है कि जिससे चकत्ती के एक बार घूमने से सम्पूर्ण दृश्य का एक बार पूरा अंशेक्षण हो जाये।

अंशेक्षक प्रकाश के गति करते हुए बिन्दु को सारे दृश्य पर ठीक उसी प्रकार चलाता है, जिस प्रकार पढ़ते समय पुस्तक के छपे हुए पृष्ठ पर हमारी आंख एक-एक पंक्ति करके चलती है। प्रकाश के बिन्दुओं से उत्पन्न होने वाले चमकीले और धुंधले प्रतिक्षेपों को एक सैलैनियम का सैल ग्रहण करता है। इस सैलैनियम सैल का सम्बन्ध एक सिरे पर बैटरी से और दूसरे सिरे पर रेडियो-ग्रहण-यन्त्र से जुड़ा होता है। प्रकाश की घटती और बढ़ती तीव्रता के अनुसार सैलैनियम का प्रतिरोध

भी घटता-बढ़ता है और ये प्रबलतर या दुर्बलतर आवेग तार में से होकर ग्रहण यन्त्र तक पहुंचते हैं। वहां वे एक बिजली की बत्ती को कम या अधिक चमकाना शुरू करते हैं। ग्रहण-यन्त्र में भी एक दूसरी चकत्ती होती है, जिसमें सर्पिल आकृति में छेद बने होते हैं और यह ठीक उसी प्रकार घूम रही होती है, जिस प्रकार पारेषक की चकत्ती घूम रही थी। वह कभी कम और कभी अधिक चमकता हुआ प्रकाश उस चकत्ती के छेदों में से होकर एक पर्दे पर जाकर पड़ता है, जहां पर अलग-अलग बिन्दुओं से मूल चित्र फिर पूरा का पूरा बनकर तैयार हो जाता है।

पौल निपकौ ने सन् १८८३ में जो 'बिजली की दूरबीन' बनाई थी—जिसे उसने जर्मनी में पेटेन्ट करा लिया था—उसमें टेलीविजन का आधारभूत तत्व विद्यमान था। वह यह सिद्धान्त था कि जिस दृश्य को पारेषित किया जाना है, उसे प्रकाश की तीव्रता की असंख्य 'इकाइयों' में विभक्त कर लिया जाना चाहिए और इन इकाइयों को (तार द्वारा या बेतार द्वारा) पारेषित किया जाना चाहिए और उन्हें ग्रहण-यन्त्र में फिर इकट्ठा कर लिया जाना चाहिए। परन्तु क्योंकि उसके सामने बहुत बड़ी तकनीकी कठिनाइयां थीं, इसलिए अन्त में निपकौ ने अपने आविष्कार को छोड़ दिया और रेलवे विभाग में नौकरी कर ली।

## उस्तरे के फलक या टेलीविजन

जौन लौगी बेयर्ड का जन्म सन् १८८८ में ग्लासगो के निकट हैलन्सबर्ग में हुआ था। वह एक पादरी का सबसे छोटा पुत्र था। उसका स्वास्थ्य इतना कमजोर था कि वह स्थानीय

विद्यालय में नियमित रूप से पढ़ने भी नहीं जा पाता था।

उसकी यान्त्रिक रुचि बहुत छोटी आयु में ही प्रकट होने लगी थी। जब वह छोटा-सा बालक ही था, तभी उसने अपनी एक दूरभाष की लाइन बना ली थी, परन्तु एक बार एक तूफान में उसकी तारें उखड़ गईं और उनमें उलझ कर एक गाड़ीवान न जाने कैसे अपनी गद्दी से नीचे जमीन पर आ गिरा। इस पर जौन के पिता को बीच में पड़ कर उस क्रुद्ध गाड़ीवान को शान्त करना पड़ा और इसके फलस्वरूप जौन को भविष्य में विद्युत् विज्ञान में टांग अड़ाने से बिल्कुल मना कर दिया गया। फिर भी जौन बेयर्ड मानने वाला कहां था? उसके बाद उसने एक पानी से चलने वाला विद्युत् उत्पन्न करने का यन्त्र बनाया। यह यन्त्र पास बहने वाले एक नाले पर छोटी-सी पनचक्की लगा कर उससे चलाया जाता था और इससे सारे घर को प्रकाशित करने के लिए बिजली प्राप्त होती थी। प्रथम विश्व युद्ध के शुरू होने तक वह ग्लासगो विश्वविद्यालय में भौतिकी विज्ञान और विद्युत् के सम्बन्ध में अध्ययन करता रहा और इसके बाद उसने सेना में भर्ती होने के लिए आवेदन किया, किन्तु वह डाक्टरी परीक्षा में रह गया। तब उसने क्लाइड वैली के बिजलीघर में अधीक्षक इंजीनियर का काम ले लिया।

परन्तु एक दिन उसके एक मित्र ने उसके पास किसी यात्रा एजेन्सी की ओर से प्रकाशित एक पुस्तिका भेजी, जिसमें ट्रिनिडाड में हमेशा रहने वाली मेघहीन स्वच्छ ऋतु का विज्ञापन किया गया था। जौन बेयर्ड ने उसे पढ़कर ट्रिनिडाड जाने और वहां आयात व्यापार शुरू करने का निश्चय किया। उसका

यह व्यापार असफल सिद्ध हुआ। इसलिए 'भागते भूत की लंगोटी भली' के न्याय से उसने एक गांव में मुरब्बा बनाने का एक छोटा-सा कारखाना खोल लिया। उस गांव में वह अकेला ही यूरोपवासी था। परन्तु दुर्भाग्य ने उसका फिर पीछा किया। उसे मलेरिया ज्वर हो गया और उसके चिकित्सक ने उसे इंग्लैंड लौट जाने की सलाह दी। वह इंग्लैंड लौट गया और वहां स्वास्थ्य सुधार के लिए हेस्टिंग्स नामक स्थान पर रहने लगा।

वहां से उसने अपनी बहन को, जो स्काटलैंड में थी, एक पत्र लिखा, जिसमें उसने उससे सलाह मांगी थी कि वह अपने भविष्य के लिए एक नये प्रकार के उस्तरे के फलक बनाने या टेलीविजन बनाने, इन दो में से किसको चुने। ये दोनों ही उसके बहुत प्रिय विषय थे।

उसकी बहन ने उत्तर दिया कि उसे उस्तरे के फलक बनाने का काम करना चाहिए। परन्तु उसकी भवितव्यता को टाला थोड़े ही जा सकता था! और बहिन की सदाशयपूर्ण सलाह के बावजूद उसने टेलीविजन बनाने का काम हाथ में ले लिया।

जौन लौगी बेयर्ड ने आविष्कारों में सबसे कठिन एक आविष्कार को जिन कठिन परिस्थितियों में करके दिखाया, उसका सम्पूर्ण आधुनिक तकनीकी इतिहास में कहीं भी कोई जोड़ नहीं है। उसके पास पैसा बिल्कुल नहीं था और उसका स्वास्थ्य बहुत ही दुर्बल था। इतना ही नहीं, अनेक वर्षों से उसका वैज्ञानिक या तकनीकी विकास से कोई सम्पर्क नहीं रहा था। इसलिए उसने हेस्टिंग्स के क्वीन्स आर्केड मुहल्ले में नम्बर ८

मकान में अपनी पुरानी सी कोठरी में सन् १६२२ में जिस काम को शुरू किया, वह बिल्कुल ही बेकार प्रतीत होता होगा। परन्तु आज उस मकान पर सगर्व एक पटिया लगी हुई है, जो इस तथ्य की साक्षी है कि टेलीविजन का आविष्कार जौन लौगी बेयर्ड ने उन दिनों उस मकान में ही किया था।

उसकी मुंह-हाथ धोने की मेज उसके सारे उपकरणों का आधार बनी। उसके ऊपर एक पुरानी चाय की पेटी लाकर रखी गई, जिसके अन्दर बिजली की मोटर रखी गई। इस मोटर को उसने एक बिजली वाले की दूकान में पीछे की ओर पड़े हुए कवाड़ में से खरीदा था। यह मोटर निपकौ चकत्ती को, जो एक मामूली गत्ते के टुकड़े को काट कर बनाई गई थी, घुमाने के लिए थी। यह निपकौ चकत्ती ही उस सारे उपकरण का एक ऐसा अंश थी, जिसका आविष्कार जौन के सिवाय किसी अन्य व्यक्ति ने किया था। प्रकाश फेंकने वाली बत्ती बिस्कुटों के एक खाली डिब्बे के अन्दर लगाई गई। उसके आगे जो लैंस लगाये गये थे, वे चार-चार आने में साइकिल की एक स्थानीय दूकान से खरीदे गये थे। किसी सैनिक सामान की दूकान से खरीदा गया एक पुराना बिगड़ा हुआ बेतार दूर-लेखी यन्त्र भी वहां था। कुछ टार्चों की बेटरियां, कढ़ाई करने की सुइयां और लकड़ी की पतली-पतली खपच्चियां वहां थीं। इन सबको परस्पर गोंद, मोम और तागों द्वारा बांधा गया था। इस सारी कामचलाऊ प्रयोगशाला के चारों ओर और आर-पार बिजली की तारों का जाल-सा बिछा हुआ था।

सच्चे आविष्कारक के अटूट धीरज के साथ जौन बेयर्ड अपने

इस तकनीकी गड़बड़झाले में महीनों तक काम करता रहा और उसके बाद सन् १९२४ की वसन्त ऋतु में वह एक माल्टा के सलीब (क्रौस) की एक कांपती हुई छाया तार द्वारा तीन गज की दूरी तक भेज पाने में सफल हुआ।

अब उसे और आगे काम करने के लिए धन की आवश्यकता थी और जब अन्त में उसे वह धन प्राप्त हो गया, तो वह लन्दन चला गया और वहां सोहो में फ्रिथ स्ट्रीट में २२ नम्बर के मकान में सबसे ऊपर की मंजिल में उसने अपने उपकरण जमाये। उस मकान पर भी बेयर्ड की सफलता के स्मारक के रूप में एक पटिया लगी हुई है।

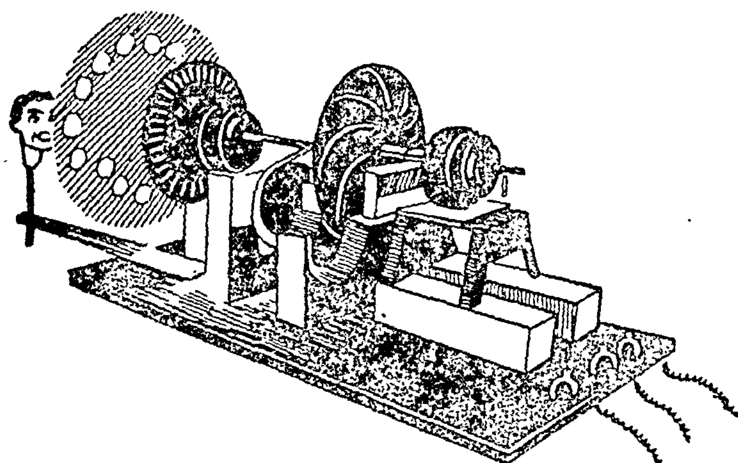
सन् १९२५ में एक दिन लन्दन की एक प्रसिद्ध दूकान के व्यवस्थापक श्री गोर्डन सैलफ्रिज ने जौन बेयर्ड को २५ पौंड प्रति सप्ताह के वेतन और सब आवश्यक सामग्री की व्यवस्था की शर्त पर नियुक्त कर लिया। यहां उसका काम यह था कि वह दिन में तीन बार उस दूकान के रेडियो विभाग में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हो और वहां अपने आविष्कार का प्रदर्शन करे और ग्राहक लोग जो प्रश्न पूछें, उनका उत्तर दें।

यद्यपि बेयर्ड को धन की बहुत अधिक आवश्यकता थी, परन्तु कुछ ही दिन बाद उसे यह लगा कि इस प्रकार प्रदर्शन के लिए उपस्थित होना और अनगिनत प्रश्नों का लक्ष्य बनना उसके वस का नहीं है। इसके अलावा अभी उसका आविष्कार इतना अपूर्ण था कि उसका इतना प्रचार करना ठीक नहीं था। अभी तक वह मनुष्य की आकृति के अलग-अलग अंग-प्रत्यंगों को पारेषित करने में सफल नहीं हुआ था।

**टेलीविजन के लिए सजीव बिल**

इस उद्देश्य को, अर्थात् मनुष्य की आकृति की विशेषताओं को यथावत् पारेषित करने को पूरा करने की ओर पहले कदम के रूप में उसने जादूगरों की एक पुरानी गुड़िया को, जिसका नाम बिल था, पारेषक के सामने रखा। और एक दिन—२ अक्टूबर १९२५ को—उसे यह देखकर परम सन्तोष हुआ कि परदे पर बिल के चेहरे के अंग-प्रत्यंग दिखाई पड़ने लगे हैं : एक धूसर-सी छाया विकसित होते हुए एक विशद आकृति के रूप में दिखाई पड़ने लगी। अब बेयर्ड के मन में एक ही विचार था कि किसी तरह एक जीते-जागते 'बिल' को लाकर अपने पारेषक के सामने खड़ा किया जाये। वह दौड़ता हुआ सीढ़ियों से नीचे उतर कर एक व्यवसाय संस्था के कार्यालय में गया, जो उसके कमरे के नीचे ही थी और जो पहला व्यक्ति उसे मिला—वह उस कार्यालय का चपरासी विलियम टेन्टन था—उसे पकड़ कर घसीटता हुआ वह ऊपर अपने कमरे में ले आया। वह लड़का (विलियम टेन्टन) 'उस पागल आविष्कारक' से इतना डर गया कि वह उसका प्रतिरोध ही न कर सका और वह गुड़िया बिल की जगह जाकर खड़ा हो गया। वह पहला मानव प्राणी था, जिसे कि पहले-पहल टेलीविजन पर दिखाया गया। दूसरा व्यक्ति बेयर्ड स्वयं था, क्योंकि बिल (विलियम टेन्टन) को ग्रहण यन्त्र में देखने की अनुमति दे दी गई और आविष्कारक बेयर्ड स्वयं पारेषक के सामने खड़ा होकर उस लड़के का और अधिक मनोरंजन करने के लिए तरह-तरह की शक्लें बनाने लगा।

वेयर्ड को सफलता किस प्रकार मिली ? उसकी पद्धति की दो बड़ी विशेषताएं ये थीं : पहली यह कि निपकौ चकत्ती और प्रकाश-विद्युत् सैल की सहायता से दृश्य का एक-एक विन्दु करके अंशेक्षण ग्रहण यन्त्र में प्रकाश की एक अंशु तेज़ी से परदे पर चलती थी और उसकी तीव्रता पारेषक से आने वाले आवेगों के अनुसार घटती-बढ़ती रहती थी। यह सारी प्रक्रिया वहुत तेज़ी से होती थी।



"एक जादूगर की पुरानी गुड़िया इस तकनीकी चमत्कार को देख रही है।"

वेयर्ड का पहला टेलीविजन पारेषक

दूसरी विशेषता यह थी कि पारेषक और ग्रहण यन्त्र में समय का मेल एक विशेष संकेत की सहायता से विठाया जाता था, जो हर तीस पंक्तियों के वाद, जिनसे मिल कर पर्दे पर सारा चित्र वनता था, पारेषित किया जाता था।

उसके बाद के वर्षों में बेयर्ड ने अपनी प्रणाली को निर्दोष बनाया; उसने अपने चित्रों की स्पष्टता को बढ़ाया, जिससे कि उन चित्रों में और अधिक बारीकियां दिखाई पड़ सकें और उसने बेतार द्वारा पारेषण की दूरी को भी बढ़ाया। स्वभावतः उसे ब्रिटिश ब्रौडकास्टिंग कार्पोरेशन से यह आशा थी कि वह उसकी पद्धति द्वारा परीक्षणात्मक टेलीविजन का पारेषण शुरू करेगा, परन्तु यह आशा मिथ्या सिद्ध हुई। प्रभावशाली वर्ग बेयर्ड के और टेलीविजन के समूचे विचार के ही विरुद्ध था। बेयर्ड ने संघर्ष करने का निश्चय किया और पार्लियामेंट के संसद सदस्यों में उसके जो मित्र थे, उनकी सहायता से वह पार्लियामेंट की एक समिति का समर्थन पाने में सफल हो गया। ब्रिटिश ब्रौडकास्टिंग कार्पोरेशन को बहुत कुछ विवश-सा होकर सितम्बर १९२९ में क्रिस्टल पैलेस से नियमित परीक्षणात्मक टेलीविजन प्रारम्भ कर देना पड़ा।

## इलैक्ट्रान गन

कुछ वर्षों तक बेयर्ड टेलीविजन कम्पनी का इस क्षेत्र में एकाधिकार रहा। परन्तु उसके बाद अन्य प्रतिद्वन्द्वी प्रणालियों ने उसे चुनौती देनी शुरू की। सारे संसार में सैकड़ों सुसज्जित प्रयोगशालाओं में हजारों अनुसन्धानकर्ता उस प्रणाली की अपेक्षा अच्छी प्रणाली खोज निकालने के प्रयत्न में लगे थे, जिसे बेयर्ड ने बिल्कुल अकेले अपने एकान्त कमरे में आविष्कृत किया था। अमेरिका की सबसे बड़ी बिजली कम्पनियों के साधन वैज्ञानिकों और तकनीकी विशेषज्ञों की सुविधा के लिए जुटा दिये गये।

यदि आविष्कारकों की इस विशाल सेना से बेयर्ड पराजित न होता, तो वह ही आश्चर्य की बात होती। इसके अलावा उसने एक बड़ी भूल यह की कि वह इलैक्ट्रानों द्वारा अंशेक्षण को अपनाने के बजाय अपनी निपकौ चकत्ती द्वारा 'यान्त्रिक अंशेक्षण' की प्रणाली से ही चिपका रहा। इलैक्ट्रानों द्वारा अंशेक्षण की पद्धति से ही उत्कृष्ट रूपरेखा (अर्थात् अपेक्षाकृत अधिक विशद चित्र) उपलब्ध हो सकती थी।

रेडियो कार्पोरेशन औफ अमेरिका के डाक्टर बी० के० ज्वोरीकिन ने, जिसका जन्म हंगरी में हुआ था, इस प्रतियोगिता में अपनी इलैक्ट्रानों वाली प्रणाली लेकर प्रवेश किया। उसका टेलीविजन का कैमरा लगभग मानवीय आंख की ही प्रतिमूर्ति है: उसमें एक लैन्स रहता है, जो आंख के स्वच्छ मंडल (कौर्निया) जैसा है। गह लैंस उस दृश्य की, जिसे कि पारेषित किया जाना है, एक प्रतिमा उस प्लेट पर बनाता है, जो कैथोड किरण नली के चौड़े सिरे पर लगी होती है। यह प्लेट मानवीय आंख के दृष्टिपटल की नकल है। इस सारी प्लेट पर प्रकाश से प्रभावित होने वाले छोटे-छोटे नुकीले कण लगे रहते हैं। वे यद्यपि एक-दूसरे के बहुत पास-पास होते हैं, परन्तु वे एक-दूसरे से इस प्रकार विसंवाहित होते हैं कि एक का प्रभाव दूसरे पर न पड़ सके। इस प्लेट को 'मौज़ेक' कहा जाता है। जब कैमरे के लैन्स द्वारा ग्रहण की गई प्रतिमा इस 'मौज़ेक' पर पड़ती है, तब वे नुकीले कण उन पर पड़ने वाले प्रकाश की मात्रा के अनुसार कम या अधिक अंश में विद्युत् से आविष्ट हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप 'मौज़ेक' दूरदर्शित किये जाने वाले दृश्य के सच्चे

विद्युतीय 'चित्र' का प्रतिनिधित्व कर रहा होता है।

इस मौज़ेक पर एक 'इलैक्ट्रान गन', जो सारतः एक कैथोड किरण नली ही होती है, इलैक्ट्रानों की एक पतली-सी अंशु फेंकती है। यह अंशु सारे चित्र पर एक-एक पंक्ति करके एक सैकिंड में कई बार गुजर जाती है। जब इलैक्ट्रानों की यह अंशु प्रत्येक नुकीले कण पर से गुज़रती है, तब उसमें भरा हुआ विद्युत् का आवेश इलैक्ट्रानों की धारा द्वारा उसमें से ले लिया जाता है (हम जानते हैं कि इलैक्ट्रान ऋण विद्युत् के कण हैं) : यह एक भारहीन झाड़ू फेरने जैसी क्रिया है। इस प्रकार उन नुकीले कणों के आवेश एक-एक करके ग्रहण किये जाते हैं और उनका उपयोग पारेषक तरंग को अधिमिश्रित करने के लिए किया जाता है—यह पारेषक तरंग उस चित्र में विद्यमान प्रकाश और छाया की बनावट को ग्रहण यन्त्र तक घटते-बढ़ते विद्युत् आवेगों के रूप में पहुंचा देती है।

ग्रहण यन्त्र का सबसे महत्वपूर्ण भाग एक बड़ी कैथोड किरण नली होती है, जिसके चौड़े सिरे पर अन्दर की ओर जिंक सल्फाइड का लेप हुआ रहता है। नली का यह छोर ही टेली-विजन का 'परदा' होता है। यहां पारेषक से आने वाले विद्युत् आवेग एक इलैक्ट्रान अंशु को, जो तेज़ी से परदे के आर-पार एक-एक पंक्ति करके चल रही होती है, अपने अनुसार चलाते हैं और इस प्रकार चित्र बन जाता है। पारेषक और ग्रहण यन्त्र का सम-कालीकरण, जैसा कि बेयर्ड की प्रारम्भिक प्रणाली में भी था, प्रत्येक पंक्ति के बाद एक विशेष संकेत भेज कर किया जाता है। सारे चित्र का एक सैकिंड में पच्चीस बार अंशेक्षण

किया जाता है, उसे पारेषित किया जाता है और फिर जोड़ कर चित्र बना लिया जाता है।

२ नवम्बर १९३६ को संसार की सबसे पहली स्पष्ट रूपरेखा वाली टेलीविजन व्यवस्था लन्दन के अलैक्जैंड्रा पैलेस में चालू हुई। शुरू में बेयर्ड और ज्वोरीकिन, दोनों की प्रतिद्वन्द्वी प्रणालियों को एक-एक सप्ताह के लिए प्रयुक्त किया जाता था। परन्तु क्योंकि बेयर्ड की प्रणाली में २४० पंक्तियों से अधिक स्पष्ट रूपरेखा नहीं आ पाती थी, जबकि ज्वोरीकिन की प्रणाली में वह रूपरेखा ४०५ पंक्तियों की थी, इसलिए परिणाम यह हुआ कि फरवरी १९३७ में बेयर्ड की प्रणाली को छोड़ दिया गया और ज्वोरीकिन की प्रणाली स्थायी रूप से अपना ली गई।

द्वितीय विश्व-युद्ध के दिनों में ब्रिटेन की टेलीविजन व्यवस्था बन्द कर दी गई। जून १९४६ में यह फिर चालू की गई और तब से लेकर अब तक टेलीविजन की तकनीकों में बहुत तेज़ी से सुधार और विकास हुआ है, जिसका श्रेय इंग्लैंड और अमेरिका के आविष्कारकों को है। ऐसे कैमरे तैयार कर लिये गये हैं, जो एक मोमबत्ती के प्रकाश में विद्यमान वस्तु को भी बिल्कुल स्पष्ट रूप से टेलीविजन पर दिखा सकते हैं। 'ज़ूम' लैन्स तैयार किये गये हैं, जो एक क्षण में किसी भी वस्तु का दूरस्थ दृश्य और क्षण भर बाद ही उसका बिल्कुल निकट से दृश्य दिखा सकते हैं। सरलता से उठाकर ले जाये जा सकने वाले 'माइक्रोवेव योजक' कैमरे को बाहर के स्थानों तक जा पाने में समर्थ बनाते हैं और वहां से वह बाहर घट रही किसी भी घटना के चित्र (उदाहरण के लिए नौकाओं की दौड़ का

दृश्य, जैसा कि वह पानी में साथ-साथ चल रहे किसी अगन-बोट से दिखाई पड़ता है) पारेषक तक भेज सकता है।

जौन लौगी बेयर्ड को ब्रिटिश ब्रौडकास्टिंग कार्पोरेशन द्वारा अमेरिकन प्रणाली का उपयोग करने के निश्चय से जो निराशा हुई थी, उस पर उसने शीघ्र ही विजय पा ली और उसने रंग और गहराई वाले चित्रों के पारेषण के सम्बन्ध में परीक्षण शुरू किये—उसने अपनी दूर दृष्टि से यह देख लिया था कि टेलीविजन के दर्शक किसी न किसी दिन इन चीजों की भी मांग करेंगे।

परन्तु अपने इस काम के बीच में ही सन् १९४६ में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी आयु केवल ५८ साल थी। जिस व्यक्ति ने टेलीविजन का आविष्कार किया और उसे जनसाधारण का मनोरंजन बनाने के लिए इतना घोर परिश्रम किया, उसके लिए वस्तुत: जीवन बहुत ही कठोर रहा था।

## तूफानों की राडार तक

तरुण मौसम वैज्ञानिक रौबर्ट वाटसन वाट स्कौटलैंडवासी एक बढ़ई का पुत्र था। वह प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ने के कुछ ही समय बाद फार्नबरो में रौयल एयर फोर्स ऐस्टैबलिशमैंट में भर्ती हो गया था। उसे एक समस्या बहुत ही महत्वपूर्ण जान पड़ती थी और वह समस्या यह थी कि विमान चालकों को तूफानों की पहले से सूचना किस प्रकार दी जा सकती है। नागरिक उड्डयन दिन दूना रात चौगुना विकसित हो रहा था और विमानों की अनेक दुर्घटनाएं इसलिए हुई थीं, क्योंकि

विमान चालक तूफानों से बच पाने में सफल नहीं हुए।

वाटसन वाट का विश्वास था कि बेतार दूर-लेखन इस समस्या को सुलझाने में काफी सहायक हो सकता है। उसने उन 'कड़-कड़' की आवाज़ों का, जिन्हें 'वायुमंडलीय कोलाहल' कहा जाता है और जो बेतार परिचालक के लिए बहुत ही परेशानी की वस्तु हैं, अध्ययन शुरू किया। उसने यह सोचा कि तूफ़ान विद्युतीय प्रपंच हैं, इसलिए यह 'कड़-कड़' की आवाज़ बहुत कुछ उनमें से ही आने वाली होनी चाहिए।

उसने 'वायुमंडलीय कोलाहल' के सम्बन्ध में अनुसन्धान का एक विशाल कार्यक्रम तैयार किया, जिसे स्वयंसेवकों की एक सेना की सेना द्वारा पूरा किया जाना था। ब्रिटिश ब्रौड-कास्टिंग कार्पोरेशन उन दिनों बना ही बना था और वाटसन वाट को यह विचार सूझा कि अनेक देशों में रहने वाले रेडियो के शौकीनों से सहायता मांगी जाये। ब्रिटिश ब्रौडकास्टिंग कार्पोरेशन से किसी खास दिन किसी खास समय पर कोई एक वार्ता प्रसारित की जानी होती थी और उसकी अग्रिम प्रतियां इन लोगों के पास भेज दी जाती थीं। उनसे कहा जाता था कि वे उस छपी हुई वार्ता के उन शब्दों पर निशान लगा दें, जिनके साथ वायुमंडल के कोलाहल की 'कड़-कड़' आवाज़ सुनाई पड़े।

बर्गन से मदीरा तक और पौट्सडम से काहिरा तक सारे यूरोप और उत्तरी अफ्रीका से यथासमय सूचनाएं प्राप्त हुईं। इन सूचनाओं से यह सिद्ध हो गया कि रेडियो से ४५०० मील तक के तूफानों की सूचना मिल सकती है और उनकी दिशा भी

जानी जा सकती है।

सन् १९२७ में ३५ वर्ष की वायु में वाटसन वाट को लन्दन के निकट स्लफ नामक स्थान पर रेडियो अनुसन्धान केन्द्र का अध्यक्ष वना दिया गया और वहां काम करते हुए उसने संसार के विभिन्न भागों की लम्बी यात्राएं कीं, जिससे, जैसा कि उसने स्वयं एक वार कहा था, वह "वायुमंडलीय कोलाहलों द्वारा दर्शक-पुस्तिका पर उनके हस्ताक्षर करवा सके।" कुछ वर्ष बाद वह टैडिंगटन में इंग्लैंड की विशाल राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोग-शाला में रेडियो भौतिकी केन्द्र का अधीक्षक वन गया और वहीं दिसम्बर १९३४ में एक दिन उसे सरकार के एक विभाग से एक गुप्त पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें उससे यह पूछा गया था कि उन तथाकथित 'मृत्यु किरणों' के विषय में उसका क्या विचार है, जिनके बारे में समाचार पत्रों और कुछ वैज्ञानिकों में चर्चा चलती रही है—क्या वस्तुतः इस प्रकार की किरणों का आविष्कार कर पाने की कोई सम्भावना है, जो दूर स्थित लोगों को मार दें या उन्हें निश्चेष्ट कर दें, विस्फोटक सामग्री का विस्फोट कर दें या मोटरगाड़ियों, टैंकों और विमानों को चलते-चलते रोक दें ?

इसके उत्तर में उसने एक लम्बी रिपोर्ट भेजी, जिसमें उसने उस सरकारी विभाग के सामने यह बात स्पष्ट कर दी कि 'मृत्यु किरण' केवल बकवास है। परन्तु उसने यह भी लिखा कि उसे एक और अधिक व्यावहारिक वस्तु सूझी है, जिसका विचार 'वायुमंडलीय कोलाहल' के विषय में काम करते हुए उसके सामने आया था : यह है एक ऐसी प्रणाली, जिसके द्वारा

बादल, कुहरे और अंधेरे में भी विमानों का पता चलाया जा सकता है। उसने इस प्रणाली का नाम 'रेडियो स्थिति निर्धारण' (रेडियो द्वारा स्थिति का पता चलाना) रखा।

सरकार ने इसमें मामूली-सी रुचि ली और उसे अपना अनुसन्धान कार्य शुरू करने के लिए थोड़ी-सी धनराशि दे दी गई। उसने युवक रेडियो तकनीक विशेषज्ञों का एक दल इकट्ठा किया और अपना काम शुरू कर दिया।

राडार—इस प्रणाली का बाद में यही नाम पड़ गया—का जन्म सन् १९३५ के आरम्भ में ब्रिटिश ब्रौडकास्टिंग कार्पोरेशन के डैवेंट्री स्थित शक्तिशाली पारेषकों से १० मील दूर एक खेत में हुआ, जहां वाटसन वाट ने अपने उपकरण स्थापित किये थे। बिल्कुल पहली परखें भी सफल रहीं। पारेषक तरंग में उड़ने वाले विमान बेतार की तरंगों को काफी ज़ोर से प्रतिक्षिप्त करते थे। वाटसन वाट का यह सिद्धान्त सही सिद्ध हुआ कि किसी विमान से बेतार की 'प्रतिध्वनि' पृथ्वी पर बिल्कुल सही-सही प्राप्त की जा सकती है और उसके द्वारा उस विमान की दूरी, दिशा और वेग का निर्धारण किया जा सकता है। वाटसन वाट ने यह समझाया कि "विमान के पंख आकाश में पृथ्वी के समानान्तर टंगी हुई एक तार के समान होते हैं। जब आप उन पर बेतार की एक शक्तिशाली तरंग फेंकते हैं, तो वे एक 'गौण पारेषक' बन जाते हैं और उस तरंग को उनसे टकराने के कोण पर ठीक उसी प्रकार वापस भेजते हैं, जैसे कि दर्पण प्रकाश की किरणों को प्रतिक्षिप्त करता है।"

अब अगली समस्या यह थी कि इस सारे अनुसन्धान कार्य को गुप्त किस प्रकार रखा जाये। क्योंकि इस नये आविष्कार का सारा महत्व इस तथ्य पर निर्भर रहेगा कि आक्रान्ता को इस बात का आभास तक न हो कि उसे बादल में और रात में भी 'देखा जा रहा है'। इसलिए रेडियो स्थिति निर्धारण के इस दल ने अपना मुख्यालय सफोक के समुद्र तट के एकान्त भाग में औरफोर्ड के निकट स्थापित किया।

## युद्ध और शान्ति काल में राडार का उपयोग

वहां इंग्लैंड के इस 'गुप्त शस्त्र' का तेज़ी से विकास होने लगा। दिसम्बर १९३५ तक ही ५ राडार केन्द्र बन चुके थे, जो परीक्षणात्मक रूप से काम कर रहे थे। मार्च १९३६ तक स्थिति यह हो गई थी कि ७५ मील की दूरी तक के विमानों का पता लगाया जा सकता था। १९३९ के ईस्टर के बाद से ऐबर्डीन से लेकर वाइट के द्वीप तक राडार की अविच्छिन्न अदृश्य 'दीवार' बनी हुई थी—यह राडार केन्द्रों की एक शृंखला थी—जिन पर दिन-रात आदमी तैनात रहते थे।

उसके बाद युद्ध छिड़ा और ब्रिटेन की हवाई लड़ाई में राडार ने अपना परम महत्व सिद्ध कर दिखाया, जिसके कारण ब्रिटेन के 'थोड़े से' लड़ाकू विमान चालकों ने जर्मनों के सामूहिक विमान आक्रमणों का मुंहतोड़ जवाब दिया और उसके बाद राडार ने रात में बमवर्षकों द्वारा किये जाने वाले प्रबल आक्रमणों का मुकाबला करने में भी सहायता दी।

फिर भी जनसाधारण को इस आविष्कार के संम्बन्ध में

कुछ भी पता नहीं था और जब सन् १९४२ में वाटसन वाट 'सर रौबर्ट' बना, तब भी समाचार पत्रों को यह प्रकट करने की अनुमति नहीं दी गई कि उसे 'सर' की पदवी किसलिए दी गई है। लड़ाई का पासा पलटने के साथ-साथ राडार का अनेक साधनों के रूप में विकास हुआ, जिनसे आकाश और समुद्र में आक्रमण की कार्रवाइयों में सहायता मिली। युद्ध की समाप्ति के बाद ही राडार और सर रौबर्ट की सफलता की पूरी कहानी प्रकट की गई।

आज राडार का अनगिनत शान्तिकालीन कार्यों के लिए उपयोग किया जा रहा है। अधिकांश बड़े-बड़े जहाजों में राडार यन्त्र लगा होता है। इसकी सहायता से बन्दरगाहों को सुरक्षित बना दिया गया है। नागरिक उड्डयन में विमानों को तूफ़ानों से बचाने और विमानों को आकाश में परस्पर टकराने से बचाने और कुहरे में और रात के समय विमानों को निरापद रूप से भूमि पर उतारने में राडार का उपयोग किया जाता है। राडार समुद्र में हिमशैलों का पता चलाता है और ह्वेल मछलियों का शिकार करने वालों की सहायता करता है। यह रेतीली आंधियों में कांगो नदी में चलने वाले जहाजों का पथ-प्रदर्शन करता है और कुहरे से ढकी टेम्स नदी में नौकाओं को आर-पार जाने में सहायता देता है।

आधुनिक राडार उपकरण किस प्रकार काम करता है ?

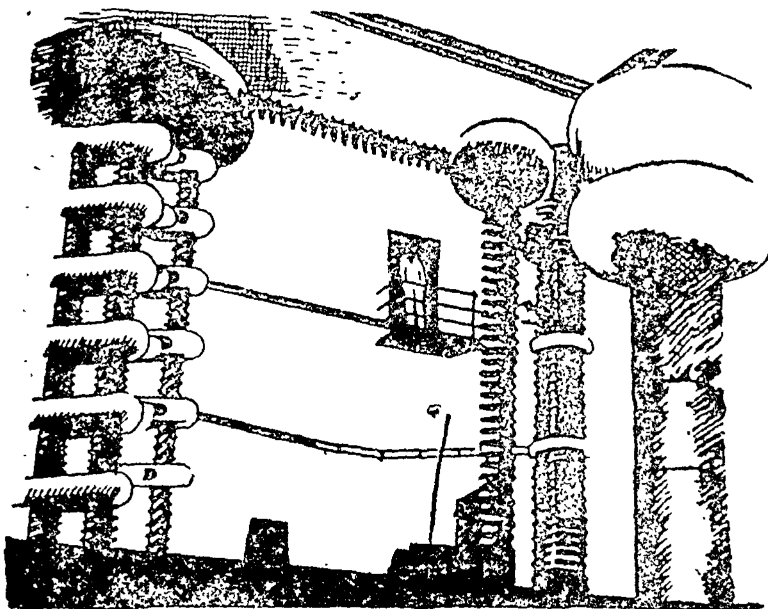
जहाज के ऊपरी भाग में खूब ऊंचाई पर या हवाई अड्डे की नियन्त्रण बुर्जी के ऊपर 'अंशेक्षक', जो राडार का एरियल होता है, घूमता रहता है। यह देखने में बीच में से आधी कटी

हुई चकत्ती जैसा होता है। अधिकांश अंशेक्षक दुमंजिले होते हैं। इसमें ऊपर का भाग पारेषण के लिए और निचला भाग ग्रहण करने के लिए होता है। अंशेक्षक एक मिनिट में दस से लेकर पच्चीस तक चक्कर की चाल से घूमता रहता है। साधारणतया पारेषक और ग्रहण यन्त्र भी इसके अन्दर ही बने होते हैं और वे भी इसके साथ ही घूमते रहते हैं।

पारेषक लगभग ३ सैंटीमीटर लम्बाई की अत्यधिक आवृत्ति वाली तरंगें प्रति सैकिंड एक हज़ार बार फेंकता है। ये तरंगें एक संकरे अंशु के रूप में केन्द्रित होती हैं। इस उपकरण का एक महत्वपूर्ण अंग 'अधिमिश्रक' (मोडुलेटर) होता है। यह एक बहुत ही अल्पकालीन 'स्पंद' इस प्रकार देता है कि पारेषक अपनी तरंगों की बौछार प्रत्येक बार ठीक एक सैकिंड के एक करोड़वें भाग के लिए और केवल इतने ही समय के लिए फेंकता है। इस ज़रा-सी अवधि के लिए ग्रहण यन्त्र का सम्बन्ध एरियल से कट जाता है। पारेषक का वाल्व 'मैगनेट्रोन' होता है। यह एक छोटा-सा वाल्व होता है, जो इन बहुत ही छोटे स्पंदों को बहुत छोटी तरंग-लम्बाइयों में भेज सकता है। यह तुरन्त चालू होता है और तुरन्त रुक सकता है।

ज्योंही एक बौछार भेजी जा चुकती है, त्योंही ग्रहण यन्त्र का सम्बन्ध एरियल से जुड़ जाता है और वह यह 'सुनता है' कि कोई प्रतिध्वनि वापस तो नहीं आ रही। तरंग अंशु के रास्ते में पड़ने वाली किसी वस्तु से टकरा कर लौटती हुई प्रतिध्वनि को अंशेक्षक का निचला भाग ग्रहण करता है, उसका प्रवर्धन करता है और फिर उसे राडार की 'जादू की आंख'—जिसे

तकनीकी भाषा में नक्शा स्थिति-सूचक (पी० पी० आई०) कहा जाता है—भेज देता है। परिचालक की दृष्टि में यह नक्शा स्थिति-सूचक उसके राडार उपकरण का पर्दा होता है।




कैम्ब्रिज में कैवेन्डिश प्रयोगशाला में उच्च वोल्टता कक्ष

यह कैथोड किरण नली का ठीक वैसा ही चौड़ा सिरा होता है, जैसा कि टेलीविजन यन्त्र का पर्दा होता है। इस नली की गर्दन के चारों ओर दो कुंडलियां होती हैं जो अन्दर की इलैक्ट्रान अंशु पर ठीक उसी प्रकार क्रिया करती हैं, जिस प्रकार देखने के लैंस प्रकाश की अंशु पर करते हैं। 'फोकस कुंडली' पर्दे पर पड़ने वाले चित्र की तीव्रता का निर्धारण करती है और 'विक्षेप कुंडली' (डिफ्लैक्शन कौइल) पर्दे पर

चमकते हुए 'विन्दुओं' के घूमते हुए निशान उत्पन्न करती है। यह कुंडली ठीक अंशेक्षक के साथ-साथ घूमती है।

चमकीले विन्दुओं की यह रेखा वस्तुतः एरियल द्वारा ग्रहण की गई प्रतिध्वनियों की एक शृंखला है और वह इलैक्ट्रानों की एक अंशु द्वारा पर्दे पर 'चित्रित' कर दी जाती है। ज्योंही स्पंद के मार्ग में पड़ने वाली किसी वस्तु से कोई प्रतिध्वनि लौटकर आती है, त्योंही कैथोड में से इलैक्ट्रानों की धारा निकलने लगती है। इसके फलस्वरूप प्रतिदीप्त पर्दे पर नली के केन्द्र से ठीक उतनी दूरी पर चमकीला बिन्दु दीख पड़ता है, जिससे नक्शा स्थिति-सूचक पर दिये गये पैमाने के अनुसार उस वस्तु की दूरी जानी जा सकती है। यह दूरी राडार-स्पंद को उस वस्तु तक जाने और अंशेक्षक तक वापस आने में लगे समय से मेल खाती है। वह चमकीला 'बिन्दु' प्रतिदीप्त पर्दे पर कुछ क्षणों तक बना रहता है और अगला चक्कर आने पर फिर चमक उठता है जिससे कि राडार का परिचालक उस वस्तु की दिशा और गति के वेग को और उसके मुकाबले में अपने जहाज की स्थिति को भी देख सकता है।

इस प्रकार राडार उस दृश्य का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर देता है, जिसे शायद आंख देख भी न पाये। यह दिन में, रात में, बादलों में और कुहरे में बिल्कुल विश्वसनीय रूप से कार्य करता है।

## इलैक्ट्रानी मस्तिष्क

इलैक्ट्रान विज्ञान का सैकड़ों कार्यों के लिए प्रयोग किया

गया है, जिससे पिछले बीस या तीस वर्षों में जीवन बहुत अधिक बदल गया है। यह प्रसारण, टेलीविजन और राडार का, ग्रामोफोन के तवे बनाने और ध्वनि वाली फिल्में बनाने का मूल आधार है। छोटा-सा रेडियो टेलीफोन, जिसका सन् १९४२ में, जब उत्तरी अफ्रीका में मित्र-राष्ट्रों की सेनाओं ने इसका पहले-पहल उपयोग किया था, छोटा नाम 'वाकी टाकी' पड़ गया था, शान्ति काल में भी अनेक उपयोगों में आ रहा है। यह उपयोग खानों में, यातायात के नियन्त्रण में, मरुभूमियों में और ऊंचे पर्वतों पर की जाने वाली यात्राओं में होता है। तार द्वारा दूर-भाषण में लम्बी दूरियों के सम्बन्ध जोड़ने के लिए तथाकथित समाक्ष (कोऐक्सियल) प्रणाली द्वारा धातु की दो पतली नलियों से, जिनमें से प्रत्येक ०·३७५ इंच व्यास की होती है, एक ही समय में ६६० वार्तालाप किये जा सकते हैं। प्रत्येक वार्तालाप के लिए एक छोटे-से रेडियो पारेषक और ग्रहण यन्त्र की आवश्यकता होती है, जिन्हें एक विशेष तरंग लम्बाई पर मिला लिया गया हो।

कारखानों और प्रयोगशालाओं में रेडियो तरंगों का प्रयोग कीलें ठोकने, धातुओं को गला कर जोड़ने और धातुओं की सतह को पक्का करने, प्लाइवुड को चिपकाने और सुखाने और झलाई तथा पीतल की टंकाई की प्रक्रियाओं के लिए पहले से ही किया जा रहा है। इलैक्ट्रानीय साधन लोहे की चादरों, प्लास्टिक की चादरों, पावरोटी और इसी प्रकार की अन्य सैकड़ों वस्तुओं के उत्पादन का नियन्त्रण कर सकते हैं और इंजीनियर लोग अभी से 'बटन-दाब कारखानों' के विषय में चर्चा करने लगे हैं, जिनमें

कच्चे माल को लेने से शुरू करके तैयार माल की अन्तिम पड़ताल तक की प्रत्येक प्रक्रिया इलैक्ट्रानों द्वारा होगी और स्वतः नियन्त्रित होगी।

बर्लिन में वैज्ञानिकों की एक टुकड़ी ने सन् १९३२ में ही पहला इलैक्ट्रानीय सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र बना लिया था। यह 'पुराने ढंग के' प्रकाश सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र से मूलतः भिन्न एक यन्त्र है। प्रकाश सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र वस्तुओं को दो हज़ार गुने से अधिक बड़ा करके नहीं दिखा सकता। इलैक्ट्रान, जिनकी विशेषताएँ प्रकाश की किरणों से भिन्न हैं, इस काम को और अच्छा कर सकते हैं, उनका वेग प्रति सैकिंड केवल लगभग बासठ हज़ार मील है—अर्थात् प्रकाश के वेग का एक तिहाई। वे केवल शून्य स्थान में ही गति कर सकते हैं और वायु उनके लिए वैसी ही अपारदर्शक है, जैसी स्याही प्रकाश किरणों के लिए है। वे शीशे के पार भी नहीं जा सकते, परन्तु वे वस्तुओं को प्रकाशसूक्ष्मवीक्षण यन्त्र की अपेक्षा पचास गुना अधिक बड़ा करके दिखा सकते हैं।

इलैक्ट्रानीय सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र में इलैक्ट्रानों की एक अंशु का उपयोग वस्तु को आलोकित करने के लिए किया जाता है। इसमें लैन्सों के स्थान पर तार की दो कुंडलियां होती हैं। इन कुंडलियों द्वारा उत्पन्न किये गये स्थिर वैद्युत् और चुम्बकीय क्षेत्र संघनित्र (कंडैन्सर), वस्तु, और आंख से देखने वाले अंश या प्रक्षेपी (प्रोजैक्टर) का काम करते हैं। इस प्रकार एक तपे हुए फिलामेंट से निकलने वाली इलैक्ट्रानीय अंशु द्वारा किसी छोटी-सी वस्तु, जैसे किसी जीवाणु, की प्रतिमा को एक पतली

सैल्यूलाइड की पट्टी पर बड़ा करके देखा जा सकता है। जीवाणु के कठोर अंगों से आकर लगने वाले इलैक्ट्रान रुक जाते हैं, परन्तु बाकी इलैक्ट्रान आगे चलते जाते हैं और एक प्रतिदीप्त पर्दे तक पहुंचते हैं। वहां वे टेलीविजन के यन्त्र की भांति दृश्य बना लिये जाते हैं या फोटोग्राफी की प्लेट पर उनका चित्र खींचा जा सकता है।

'देखने से विश्वास हो जाता है'—परन्तु उतने से सर्वदा पहचान नहीं हो पाती। अब तक वैज्ञानिक लोग केवल उन थोड़े से सूक्ष्म पदार्थों को अलग-अलग पहचानने में समर्थ हुए हैं, जिन्हें कि उन्होंने इलैक्ट्रानीय सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र की सहायता से देखा है। परन्तु जब एक बार उन्होंने इस विचित्र नये संसार में, जिसे इस यन्त्र ने उनके लिए खोल दिया है, अपना मार्ग पा लिया है, तब इस नये साधन द्वारा किये जाने वाले अनुसंधान से मानव जाति को अवश्य ही बहुत अधिक लाभ होगा।

सम्भवत: इलैक्ट्रानों का सबसे आकर्षक उपयोग वह है, जिसे वैज्ञानिक लोग 'साइबरनैटिक्स' कहते हैं और जनसाधारण की भाषा में जिसे 'इलैक्ट्रानीय मस्तिष्क' कहा जाता है। यन्त्रों की इस नई जाति की दादी 'बैसी' थी, जो सन् १९४४ में हारवर्ड विश्वविद्यालय में बनाई गई थी। यह ७,६०,००० पुर्जों का एक लम्बा, पतला और शीशे से ढका हुआ संग्रह था, जिसमें कई हज़ार तो कैथोड किरण वाल्व ही थे। इन्हें बहुत कुशलतापूर्वक तारों से जोड़ा और इस प्रकार मिलाया गया था कि वे राकेट के गतिप्रदाताओं, खगोल विज्ञान, नाभिकीय भौतिकी विज्ञान, वायु गतिकी या त्रिकोणमिति के विषय में

अनागनत गणित-सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर दे सकें। 'वैसी' को जो एक सबसे लम्बा काम करने को दिया गया, उसे पूरा करने में उसे १०३ घंटे लगे। वह यूरेनियम के विखंडन से सम्बन्धित एक गणित का प्रश्न था। मनुष्य गणितज्ञ को उस प्रश्न को निकालने में एक सौ वर्ष लगते।

आज तो इस 'वैसी' के कितने ही लड़के और पोते हैं। इन्हें इलैक्ट्रानीय या अनुरूप संगणक कहा जाता है और वैज्ञानिक लोग इनके लिए 'मस्तिष्क' शब्द का प्रयोग करना पसन्द नहीं करते। कारण यह है कि यद्यपि ये मशीनें काफी कुछ 'सोचने का काम' कर सकती हैं, फिर भी उन्हें पहले यह बताना होता है कि उन्हें क्या सोचना है और वह कैसे सोचना है। परन्तु ये अनुदेश दे दिये जाने के बाद वे बिल्कुल चमत्कार करके दिखा सकती हैं। वे ऐसे समीकरण, जिनमें पचास या सौ अज्ञात हों, कुछ सैकिंडों में निकाल दे सकती हैं और बीस अंकों का गुणा एक सैकिंड के दस हजारवें भाग में कर दे सकती हैं। वे गणित के प्रश्नों को उस प्रकार नहीं निकालतीं, जैसे हम निकालते हैं। उनका काम इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि प्रत्येक वाल्व या रिले के सामने प्रतिक्रिया के केवल दो ही विकल्प होते हैं : 'स्पंद' या 'अ-स्पंद'। इसमें चतुराई यह है कि इन यन्त्रों में दशमलव अंक नहीं दिये गये होते, अपितु अंक 'युग्म' रूप में दिये गये होते हैं—अर्थात् वे दो संख्या के घात के अनुक्रम में (यौगिक संख्याओं के रूप में) दिये गये होते हैं। युग्म संख्याएं सामान्य संख्याओं जैसी ही होती हैं; अन्तर केवल इतना है कि उनमें से प्रत्येक अंक या तो एक (स्पंद) या शून्य

(अ-स्पंद) होता है।

इन यन्त्रों में मनुष्य के मस्तिष्क की भांति 'स्मृति' भी होती है। वे संख्याओं और अनुदेशों को जमा करके रख सकते हैं। उनमें यह चुनने की भी योग्यता होती है कि पहले दिये गये काम को कर चुकने के बाद उसके परिणाम के अनुसार आगे उन्हें किन अनुदेशों का पालन करना है। यह पिछली विशेषता ऐसी है कि जिसके कारण इन यन्त्रों का उपयोग अनेक ऐसे कामों के लिए किया जा सकता है, जिनमें बड़े-बड़े प्रश्नों को हल करना पड़ता है और यही वह विशेषता है, जिसका अध्ययन शरीर क्रिया-वैज्ञानिक मानवीय मस्तिष्क की कार्य-प्रणाली के विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए कर रहे हैं।

उनके निर्माण के बाद बहुत थोड़े ही समय के अन्दर संगणक यन्त्रों को अनगिनत प्रकार के काम करना सिखा दिया गया है। उद्योगों में वे स्वतःचालित यन्त्रों का नियन्त्रण कर सकते हैं, यहां तक कि समूचे स्वतःचालित कारखानों को चलाते रह सकते हैं। वे विमानों को चला सकते हैं, एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद कर सकते हैं, बोले गये शब्दों को टाइप कर सकते हैं और खानों में खुदाई करने वाले मज़दूरों के स्थान पर और यातायात का नियन्त्रण करने वाले पुलिस कर्मचारी के स्थान पर स्वयं काम कर सकते हैं। ये उन अनेक कामों में से थोड़े से काम हैं, जो हमारे आज के यंत्र-मानव (रोबट) युग में संगणक यन्त्र कर रहे हैं।

क्या ये यन्त्र-मानव किसी दिन स्वतन्त्र हो जायेंगे और

अपने निर्माता मनुष्य से भी 'अधिक सोचना' शुरू कर देंगे ? यह खतरा नहीं है, क्योंकि भले ही हम उन्हें अत्यन्त संवेदनशील अंगों, जैसे प्रकाश विद्युत्-सैलों, दबाव मापकों और माइक्रोफोनों इत्यादि से सज्जित कर दें और सब प्रकार के कामों को करने के लिए औजारों से सज्जित कर दें, तो भी इस बात का कोई खतरा नहीं है। यह ठीक है कि वे हमें बहुत-से परिश्रम और मेहनत से छुटकारा दे देते हैं, परन्तु ऐडीसन ने एक बार कहा था कि प्रतिभा एक प्रतिशत स्फुरणा और निन्यानवे प्रतिशत परिश्रम है। वह एक प्रतिशत, वह दिव्य स्फुरणा, जिसने मनुष्य को इस संसार का, जिसमें हम रहते हैं, सृजन करने में समर्थ बनाया है, किसी भी यन्त्र में कभी भी प्रतिभा की दीपशिखा प्रज्वलित नहीं करेगी।



## इस पुस्तक में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों के अंग्रेजी पर्याय

| | |
|---|---|
| अंशु | Beam |
| अंशेक्षक | Scanner |
| अतलान्तक | Atlantic |
| अधिमिश्रण | Modulation |
| अनुनादक | Resonator |
| अनुरूप संगणक | Analogue Computor |
| अनुलोम, धन | Positive |
| अन्तर्दहन | Internal combustion |
| अभिक्रियक | Reactor |
| अभिसीमा | Range |
| अयन | Ion |
| आदि रूप | Prototype |
| आयाम | Dimension |
| आर्मेचर | Armature |
| आवृत्ति, बारम्बारिकता | Frequency |
| आवेग | Impulse |
| आवेश | Charge |
| आरेख | Diagram |
| इलैक्ट्रान | Electron |
| इलैक्ट्रानिकी विज्ञान | Electronics |
| ईंधन सैल | Fuel cell |

| | |
|---|---|
| उड़न ढरकी | Fly shuttle |
| उद्दीप्त | Incandescent |
| ऊर्जा | Energy |
| ऊर्ध्वाधर | Vertical |
| ऊष्मा | Heat |
| ऋण, नकारात्मक, प्रतिलोम | Negative |
| ऐंठा हुआ | Warped |
| ऐनामोर्फिक लेंस | Anamorphic lense |
| ऐनोड | Anode |
| कर्णभाप | Earphone |
| कार्बुरेटर | Carburetor |
| कूचुक | Cauotchouc |
| कैथोड | Cathode |
| कैथोड किरण नली | Cathode ray tube |
| कोलोडियन | Collodian |
| क्रैंक | Crank |
| क्षैतिज | Horizontal |
| खटका | Catch |
| खोल | Casing |
| गठबन्धन हो गया | Married |
| गतिमात्रा | Momentum |
| गतिप्रदाता | Motor |
| गरारियां | Sprocket |
| गत्ता | Papier Mache |
| गुटिका | Nodule |
| गुरुत्वाकर्षण | Gravity |
| ग्रहण यंत्र | Receiver |

| | |
|---|---|
| ग्लाइडर | Glider |
| चकत्ती | Disc |
| ज़ूम लैन्स | Zoom lense |
| टर्बाइन | Turbine |
| टिकर | Ticker |
| डायनमो | Dynamo |
| तत्वान्तरण | Transmutation |
| तापमापी | Thermometer |
| तुंगता | Altitude |
| त्रिकोणमिति | Trigonometry |
| थापी | Beater |
| दंड | Shaft |
| दफ्तरशाही | Bureaucratic |
| दबाव पाची | Pressure-cooker |
| दिक्सूचक | Compass |
| दूरभाष, टेलीफोन | Telephone |
| दूरभाषण | Telephoney |
| दूरलेखन, तार | Telegraph |
| दृष्टि पटल | Retina |
| दो पंखों वाला विमान | Biplane |
| दोलक | Oscillator |
| दोलन | Oscillation |
| ध्रुवीकृत | Polarised |
| ध्वनि पथ | Sound Track |
| ध्वनिरोध | Sound barrier |
| नक्शा स्थिति सूचक | Plan position indicator |
| नान्ते की राजाज्ञा | Edict of Nantes |

| | |
|---|---|
| नाभिक | Nucleus |
| नाभिकीय विखंडन | Nuclear fission |
| न्यूट्रान | Neutron |
| पंखी | Propeller |
| पदार्थ (भौतिक तत्व) | Matter |
| परावर्तन | Refraction |
| परिपथ | Circuit |
| पारेषक | Transmitter |
| पिस्टन | Piston |
| पुनःप्रचालन, योजन | Relay |
| पुनरावर्तक | Repeater |
| पेटेंट | Patent |
| प्रकाश की अंशु | Beam of light |
| प्रकाश विद्युत सैल | Photo electric cell |
| प्रक्षेपी | Projector |
| प्रतिलोम | Negative |
| प्रतिध्वनि | Echo |
| प्रतिरोधक | Resistances |
| प्रदीप्त | Fluorescent |
| प्रवर्धित | Amplified |
| प्रवर्धित करना | Amplify |
| प्रकाश विद्युतीय | Photo electric |
| प्रसारण | Broadcasting |
| प्रेरक | Inductor |
| फट्टी | Lath |
| फर्मा | Forme |
| फलक | Panel |

| | |
|---|---|
| फिलामैंट | Filament |
| बृहद् दर्शक कांच | Magnifying glass |
| बैटरी | Battery |
| बौछार | Burst |
| भारी जल | Heavy Water |
| भिन्नक गियर | Differential gear |
| मन्दक | Moderator |
| मुख्य संचलक | Prime mover |
| मेसान | Meson |
| मैट्रिक्स | Matrix |
| मौज़ेक | Mosaic |
| यंत्रजात | Mechanism |
| युग्म रूप | Binary form |
| योजक | Link |
| राडार | Radar |
| रेडियो स्थिति निर्धारण | Radiolocation |
| लंगर | Anchor |
| वलय | Ring |
| वायु गतिकी | Aerodynamics |
| वायुदाब मापी | Barometer |
| वायुमंडलीय कोलाहल | Atmospherics |
| वाष्पित्र | Boiler |
| वाहक तरंग | Carrier wave |
| विकिरण | Radiation |
| विक्षेप कुंडली | Deflection coil |
| विघटित होना | Disintegrate |
| विद्युत आवेश | Electric charge |

| | |
|---|---|
| विद्युत विभव | Electrical Potential |
| विसंवाहित | Insulated |
| विसर्जन | Discharge |
| वोल्तीय पुंज | Voltaic Pile |
| शिक्षुता | Apprenticeship |
| शीतक | Coolant |
| शून्य स्थान, वैक्यूम | Vacuum |
| शृंखला प्रतिक्रिया | Chain reaction |
| संघनित्र | Condenser |
| संधि | Treaty |
| संपीडक | Compressor |
| संवाहक | Conductor |
| समकालीकरण, समकालन | Synchronisation |
| समताप मंडल | Stratosphere |
| सम विन्यासी | Stereoscopic |
| समस्थानिक | Isotope |
| समाक्ष | Co-axial |
| साइबरनैटिक्स | Cybernetics |
| सापेक्षता सिद्धान्त | Theory of Relativity |
| सिलिंडर | Cylinder |
| सुरक्षा कपाटी | Safety valve |
| सैल्युलायड | Celluloid |
| स्थिर वैद्युत् | Electrostatic |
| स्पन्द | Pulse |
| स्पष्टता | Definition |
| स्वच्छ मंडल | Cornea |
| ह्यूजनो | Hugenot |